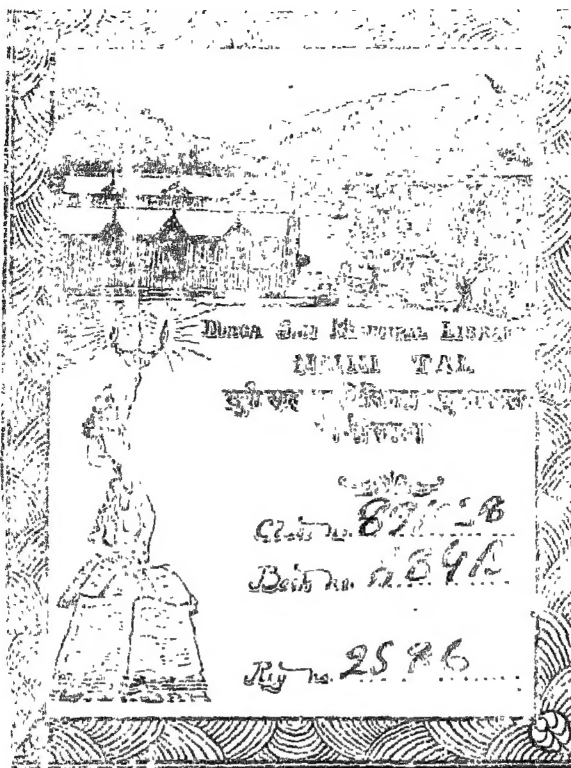

Class no.
Book no.
Reg no.

बैंगन का पौधा—अश्क जी की अप्रकाशित कहानियों का नया संग्रह है। पहली कहानी को छोड़कर शेष सब कहानियाँ नयी हैं।

बैंगन का पौधा की कहानियों में एक अल्हड़ मनोरंजकता और मस्ती है। स्व० प्रेमचन्द को इनमें से कई कहानियां, विशेषकर 'तांगे वाला' और 'एरोमा' बड़ी पसंद थीं और बैंगन का पौधा तो लेखक की सर्व-श्रेष्ठ कहानियों में से एक है।

अश्क जी का साहित्य पढ़ने वालों के लिए यह संग्रह एक दूसरे कारण से भी महत्वपूर्ण है। इसमें लेखक की अधिकांश वे कहानियां संकलित हैं जो उसने अपने लेखन-काल के उन आरम्भिक वर्षों में लिखी थीं जब उनका आदर्शगामी हृदय आकाश की गहराइयों में तरारे भरता था। इन कहानियों की आदर्शोन्मुख-रूमानियत पाठक को अनायास अपने साथ बहा ले जाती है।

'पिंजरा', 'दो धारा', 'काले साहब', 'जुदाई की शाम का गीत' और 'छींटें' के कथाकार को जानने के लिए बैंगन का पौधा की कहानियों को पढ़ना नितान्त आवश्यक है।

बैंगन का पौधा

UNITED STATES INFORMATION SERVICE
AMERICAN EMBASSY
54 QUEENSWAY, NEW DELHI INDIA

Librarian
MUNIC PAL LIBRARY
The Mall,
NAINI TAL. U.P

बैंगन का पौधा

[नयी कहानियाँ]

उपेन्द्रनाथ अश्क

नीलाभ-प्रकाशन-गृह

इलाहाबाद

प्रकाशक
नीलाभ प्रकाशन गृह
५ खुसरो बाग रोड
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
३।)

मुद्रक
हर प्रसाद बाजपेयी
कृष्ण-प्रेस, प्रयाग

उन असंख्य अनजाने पाठकों के नाम जिन्होंने मेरी इन आरम्भिक कहानियों में अपनी तरुणाई का वेदन और स्पन्दन पाया।

कमल

It 's good to have money and the things that money can buy, but it is good, too, to check up once a while and make sure you have'nt lost the things that money can't buy.

प्रकाशकीय

एक को छोड़कर इस संग्रह में वे सब कहानियाँ संकलित हैं, जो अश्क जी ने अपने लेखन-काल के आरम्भिक दिनों में लिखी थीं। उस समय भी ये कहानियाँ बड़ी लोक-प्रिय हुई थीं और आशा है कि अब भी उतनी ही लोक-प्रिय होंगी।

इन कहानियों के रूप में अश्क जी की प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ था, इसलिए इनमें नयी कोंपल की सी ताज़गी, कोमलता और सहज आकर्षण है। जिन पाठकों ने लेखक को 'पिंजरा', 'दो धारा', 'काले साहब', 'जुदाई की शाम का गीत' और 'छींटे' की कहानियों में देखा है, वे उनकी कला के इस अल्हड़ रूप को देखकर अवश्य विमुग्ध होंगे।

—प्रकाशक

अनुक्रम



बैंगन का पौधा

यद्यपि माहीराम ने वह बैंगन का पौधा उखाड़ दिया है, तो भी जब मैं सब्जी के खेत के मेढ़ पर से होता हुआ, अपनी कोठी को जाता हूँ, मेरी आँखों में बैंगन का वह सूखा-सड़ा पौधा और उस पर लटकता हुआ पीला, पिचका, मुरझाया बैंगन घूम जाता है।

सर्दियों के संक्षिप्त दिन को बीते देर हो गयी थी। खाना खाने के बाद एक लम्बा चक्कर लगाकर जब मैं नीचे खादी की मोटी बनियाइन, उस पर मोटी खादी की क़मीज़, उस पर गर्म कुर्ती, फिर गर्म अचकन और गुलूबन्द और इन सबके ऊपर ओवरकोट डाटे, हाथ में बैट्री लिये, लोहे की एड़ीवाले अपने फ़्लेक्स के बूटों की ठक ठक से मस्त, पूस की तीखी ठंडी, सूखी हवा से बचने के लिए कानों को ओवरकोट के कालरों में छिपाता, अपनी कोठी के बरामदे में दाखिल हुआ तो वहाँ एक मैली सी चारपाई पर एक बूढ़े को जीर्ण-शीर्ण सा, अँधेरी काली रात की तरह मैला काला लिहाफ़ लपेटे, खाँसते देखकर कुछ चकित सा रह गया।

"क्यों भई, क्या बात है?" मैंने ओवरकोट की जेबों में अपने दोनों हाथों को एक दूसरे के निकट लाते हुए कहा।

"कुछ नहीं बाबू जी, मैं माहीराम का आदमी हूँ।"

"माहीराम ही के सही, लेकिन इतनी सख़्त सर्दी में तुम इस खुले बरामदे में क्यों पड़े हो?"

"मेरे पास कपड़ा है बाबूजी।"

मैंने चुपचाप अपना कमरा खोला। चौदह लाइन का बड़ा डिटमार्का टेबल लैम्प जलता छोड़ गया था और यद्यपि ऊपर के दोनो रोशनदान खुले थे, तो भी कमरा गर्म हो गया था। मेरे प्रवेश करते ही गर्म, लेकिन मिट्टी के तेल में लिपटी हुई, तेज़ बू का भभका आया। प्रायः मेरे मित्रों ने मुझे इस प्रकार लैम्प जलाकर छोड़ जाने से मना किया है। "नगर की गन्दी हवा को छोड़कर इस खुले में निवास करने से लाभ ?" वे पूछा करते हैं, "यदि नगर की बुरी आदतों को वहाँ न छोड़ा जाय!" और वे मुझे सुझाते हैं कि डाक्टरों के मतानुसार कमरे को बन्द करके, अन्दर लैम्प जला रखना अत्यन्त हानिकारक है, साँस के रास्ते गन्दी हवा अन्दर जाती है, फेफड़ों पर उसका दबाव पड़ता है और फेफड़े कमज़ोर हो जाते हैं। मैं प्रायः ऐसा अनुभव करता भी हूँ, लेकिन इसको क्या करूँ कि मैं नित्य ऐसा करने को विवश हो जाता हूँ। जब भी कभी किवाड़ खोलकर बैठता हूँ और तीखी वायु का झोंका अन्दर आता है और मेरे हाथ सन्न हो जाते हैं और कलम मेरे में हाथ चलने से इनकार कर देता है, तब मैं उठकर किवाड़ बन्द कर देता हूँ। जैसे सिगरेट-पीनेवाले को उसकी कड़ुवी कसैली, सिर चकरा देनेवाली गन्ध अच्छी लगने लगती है, कुछ इसी तरह यह सब मुझे अच्छा लगने लगा है।

हैट को खूंटी पर टाँग, गुलूबन्द को निकालकर, उससे सिर और कानों को लपेट मैं काम पर बैठ गया।

बैठ तो गया, किन्तु ध्यान बरामदे की ओर ही लगा रहा।

इस बूढ़े को मैंने देखा था। सुबह ही देखा था। वह बैंगन के पौधे छाँट रहा था और डाइनिंग हाल से घर को आते हुए मैंने उससे पूछा भी था कि वह क्यों ऐसा कर रहा है। उसने बताया था कि बैंगन दो बार फल देता है। एक बार छाँट दिया जाय तो और भी बढ़ता-फूलता है। मैंने उन सूखे पल्लव-हीन बैंगन के पौधों पर निगाह दौड़ाई थी। एक पौधे पर एक सूखा, सिकुड़ा, मुरझाया, पीला बैंगन लटक रहा था। वहाँ से

हटकर मेरी दृष्टि उस बूढ़े पर गई थी। उसकी उम्र न जाने कितनी थी, किन्तु वह बेहद बूढ़ा दिखाई देता था। यद्यपि सर्दी से बचने के लिए उसके पास खेसी थी, तो भी उसके लकड़ी से पतले पीले हाथ, बाँस सी पतली टाँगे, सूखा पिचका चेहरा और आँखों के गड्ढे साफ़ दिखाई देते थे। तब एक अजीब सा ख़्याल मेरे मन में दौड़ गया था—बैंगन का पौधा जब सूख जाता है तो छाँटने पर फिर फल उठता है, सहजन भी छाँटने पर बढ़ता है। ऐसे पेड़ और पौधे हैं, जो छाँटने पर और भी ज्यादा बढ़ते हैं। मानव को उस अदृश्य स्रष्टा ने ऐसा क्यों नहीं बनाया ? किन्तु तभी अंतर में किसी ने कहा कि मानव की बेलि भी तो अमर है—पुरुष-स्त्रियाँ, बच्चे-बूढ़े, इसके फल-फूल, पत्ते और शाखाएँ हैं। मृत्यु इसकी कैंची है। जब वे सड़-सूख जाते हैं तो वह कैंची उन्हें काट देती है और उनके स्थान पर नित नूतन, हरे भरे, जीवन के उल्लास से किलकारियाँ मारते, हंसते. नाचते, गाते, पत्ते फूल फल लगते जाते हैं।

किन्तु यह बूढ़ा यहाँ सर्दी मे क्यों आ पड़ा है ? क्या इसका घर दर कोई नहीं ? और तनिक चौंककर मैंने पूछा, 'क्यों जी तुम हो कौन ?'

"जी मैं माहीराम का आदमी हूँ।'

"हाँ, माहीराम के आदमी तो हो, लेकिन माहीराम के क्या लगते हो ?"

बूढ़ा कुछ उत्तर देने लगा था कि उसे खाँसी का दौरा हुआ। कई क्षण तक निरन्तर खाँसने के बाद, अपनी साँस को कठिनाई से दुरुस्त करते हुए, उसने बताया कि वह माहीराम का कुछ नहीं लगता। वह उसके गाँव का है। कुटुम्ब बहुत बड़ा है। पाँच छोटे छोटे बच्चे हैं, और बीवी, दो लड़कियाँ हैं ब्याहने योग्य और वह रोज़गार के लिए माहीराम के साथ चला आया है।

उसकी वाणी में कुछ ऐसी करुणा थी कि काम करना मेरे लिए दुष्कर हो गया। मैं शरीर पर इतने कपड़ों के होते भी पतलून के ऊपर

कम्बल डालकर गर्म कमरे में बैठा हूँ और यह ग़रीब ठंड में पड़ा है। बिस्तर के नाम पर शायद मैली फटी दुलाई उसके पास है और वह काला लिहाफ़ भी शायद वर्षों का पुराना है।

आर्द्र सा होकर मैंने कहा, "तो भाई अन्दर लेट जाओ, बाहर तो बड़ी ठंडी है। बरामदा दो तरफ़ से खुला है। बाहर तुम क्यों बैठे हो?"

किन्तु तभी सीमेंट के फ़र्श पर भारी जूतों की आवाज़ सुनाई दी और दूसरे क्षण माहीराम—वह ठेकेदार गोपालदास का छः फ़ुट तीन इंच लम्बा आदमी दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। बड़ी सी पगड़ी, उसके नीचे काला मोटा कम्बल, घुटनों तक धोती और पाँव में सेर सवा सेर का जूता—एक दिन महज़ छः मूलियों के लिए वह प्रेस तक एक आदमी के पीछे भागा भागा गया था और खेत में उसे पकड़कर उसने उसे वे पटखनियाँ दी थीं कि फिर उसने कभी उधर को मुंह न किया था।

"हमने खुद इसे वहाँ सुलाया है बाबू जी, "वह बोला", न जाने कौन साला रात को खेतों में डाका डालता है। दो तीन दिन देखते हो गये हैं। कल गोभी के दस फूल ग़ायब हो गये। सारे खेत में ऐसे फूल न मिलेंगे, परसों कोई पक्के टमाटर उतार ले गया। आप जानते हैं कि हमें किचन की सब्ज़ी भी सप्लाई करनी होती है और फिर बाबू जी दो सौ रुपये का ठेका है। वह भी तो इसी में से पूरा करना है।"

मैंने कहा, "लेकिन सब्ज़ी पर कौन डाका डाल जाता है? यहाँ तो चोरी होने की बात कभी सुनी नहीं। मेरी कोठी सुनसान में है, पास कोई कोठी नहीं, किन्तु मैं तो दरवाज़े खुले छोड़कर घण्टों ग़ायब रहता हूँ। कोई बाहर का आदमी न आता हो।'

"नहीं बाबूजी। बाहर का आदमी इतनी ठण्ड में गोभी के केवल दस फूल लेने नहीं आ सकता।"

"किन्तु उस दिन मूलियाँ भी तो......"

"वह और बात थी बाबूजी, वह तो कोई राह चलता आदमी था। जाता जाता उखाड़ ले गया। यह कोई यहीं का ही है। मैं साले को पकड़ कर ऐसी सीख दूंगा कि फिर जनम भर किसी चीज़ को हाथ न लगाये।" और उसके मोटे मोटे ओंठ फैल गये और चेचक भरा चेहरा तन गया।

"किन्तु भाई चाहो तो इसको अन्दर सुला दो, सर्दी बहुत है।"

"नहीं बाबू जी, सर्दी आप अमीरों को लगती हैं। हमें सर्दी नहीं लगती। इसे तो योंही यहाँ दिखावे मात्र को सुला दिया है। रखवाली तो उन मोंगरों के पीछे बैठकर मैं करूँगा। ज्यों ही यह समझकर कि बूढ़ा सो गया है, कोई आया कि मैंने दबोचा।"

और वह हँसा।

"लेकिन इसके पास कपड़ा......"

"काफ़ी कपड़े हैं इसके पास बाबू जी।" और वह चला गया।

बूढ़े को फिर खांसी का दौरा हुआ।

मैं फिर काम में निरत हो गया। किन्तु काम मुझसे हुआ नहीं। मेरे सामने उन दोनों के स्वामी का चित्र खिंच गया। ठेकेदार गोपालदास—धन-दौलत, सम्पत्ति, सन्तान और निश्चिन्तता के कारण जिसके गाल इस पचास वर्ष की आयु में भी गुलाब की भाँति सुर्ख थे—अपने गर्म लिहाफ़ में लेटा, दमकती हुई अंगीठी से गर्म अपने कमरे में मज़े से गप्पें लड़ा रहा होगा अथवा ताश या शतरंज से मन बहला रहा होगा......

और यही कुछ सोचते सोचते मेरी आँखें मुँदने लगीं—खाना मैं ज़्यादा खा गया था, कपड़ों का बोझ मैंने लाद रखा था और कमरा मेरा गर्म था—मैं उठा। कुछ ज़रूरी काग़ज, क़लम दवात लेकर सोने के कमरे में छोड़ आया। सोचा, कल तनिक सुबह उठकर काम करूँगा। फिर वापस आकर दफ़्तर के कमरे को ताला लगाते हुए मैंने बूढ़े से पूछा कि

वह चाहे तो मैं दफ़्तर का ताला खुला छोड़ दूँ। लेकिन "नहीं नहीं बाबूजी मेरे पास काफ़ी कपड़े हैं" उसके यह कहने पर मैं ताला लगा अपने स्निग्ध, गर्म छोटे से सोने के कमरे में चला गया। बिस्तर बिछा था, सिर्फ़ लिहाफ़ पर मैंने कम्बल और डाल लिया और कपड़े बदलकर मैं लेट गया। बिस्तर हिम की भाँति ठंडा था। मैंने पाँव सिकोड़ लिये और फिर उन्हें धीरे-धीरे फैलाया। कई तरह के विचार मस्तिष्क में घूमने लगे,—तारतम्य-हीन, बे-रब्त और असंयत—पर लिहाफ़ की गर्मी से आँखें भारी हो गई और फिर बन्द हो गईं।

सोते सोते, कभी माहीराम, कभी उस वृद्ध और कभी उनके स्वामी ठेकेदार की शक्लें मेरे सामने आने लगीं।

मैंने देखा कि माहीराम ने चोर पकड़ लिया है और वह उसे पीटता पीटता पास के गाँव 'वैरोके' तक ले गया है और सब गाँववालों को एकत्र करके उसने एलान किया है कि जो हमारी सब्ज़ी चुरायेगा, उसको ऐसा ही दंड मिलेगा। इतना कहकर वह फिर चोर को पीटता है। चोर दयनीय निगाहों से उसकी ओर देखता है और मैं हैरान होता हूँ कि वह ठेकेदार के सिवा कोई नहीं—वही घुटा हुआ सिर, वही फूले गाल और वही चौरस नाक।

मेरी आँख खुल गई। देखा, पाँव से रज़ाई उतर गई थी। अधिक खा जाने के कारण छाती कुछ भारी और गला सूखा जा रहा था।

सिरहाने रखे हुए लोटे से पानी पीकर, अच्छी तरह से लिहाफ़ लेकर, दोनों ओर से उसे पाँवों के नीचे दबाकर मैं फिर लेट गया। बाहर हवा मकान की दीवारों से टक्करें मार रही थी और पेड़ उसके वेग का भरसक मुक़ाबिला करते हुए जोश की शिद्दत से चिंघाड़ते थे—शाँ—शाँ—शाँ! और दूर बादल की गर्ज और बिजली की कड़क भी सुनाई देती थी। किन्तु गर्म होकर मेरा शरीर फिर शिथिल हो गया। मैं सो गया।

इस बार मैं देखता हूँ कि ज़ोर की वर्षा हो रही है। तेज़ हवा चल

रही है। पाव पाव भर के ओले पड़ रहे हैं। सब्ज़ी सारी तबाह हो गई है। क्यारियों में पानी भर गया है। केवल उस पीले 'पिचके, सिकुड़े बैंगन का पौधा खड़ा रह गया है। फिर वह बैंगन मेरे सामने बड़ा होना शुरू हो जाता है और मैं देखता हूँ कि उसकी शक्ल उस बूढ़े सी बन गई है—घुटनों को बाहों के घेरे में लिये, छाती से लगाये, वह सिकुड़ा, सिमटा, नंगा अपनी चोटी के सहारे लटक रहा है, उसी बैंगन के पौधे के साथ। ओले उसके सिर पर लगते हैं, तो भी उसी तरह लटका झूलता है........

फिर देखता हूँ कि वह बैंगन का पौधा एक बड़ा ऊँचा, न जाने जामुन का, न जाने आम का पेड़ बन जाता है। लोगों की भीड़ उसके नीचे खड़ी शोर मचा रही है—बूढ़ा मर गया......बूढ़ा मर गया......बूढ़ा फाँसी लगाकर मर गया......

फिर मेरे कानो में सिर्फ 'मर गया'...'मर गया' की आवाज़ें आती हैं।

मैं जगा, देखा कोई ज़ोर ज़ोर से किवाड़ खटखटा रहा है।

सिरहाने रखी हुई गर्म जुराबें पहन, सिर पर गर्म टोपी रख और कम्बल को अपने इर्द-गिर्द अच्छी तरह लपेटकर मैं उठा और किवाड़ खोले।

बाहर सेक्रेटरी साहब दूसरे लोगों के साथ खड़े थे। वर्षा हो रही थी, दूर दृष्टि की सीमा तक पानी ही पानी दिखाई देता था और दिन काफ़ी चढ़ आया था।

"क्या बात है?" मैंने पूछा।

'रात आपके बरामदे में बूढ़ा मर गया।'

मैंने देखा, उसी काली सी चारपाई पर अपने इर्द-गिर्द लिहाफ़ लपेटे झुका सा बूढ़ा पड़ा है। उसका लिहाफ़ वर्षा से बिलकुल भीग गया है और पानी ने सारे बरामदे को गीला कर दिया है।

"मैंने तो इससे रात में ही कहा था कि अन्दर......" मैंने कहना शुरू किया।

सेक्रेटरी साहब बोले, "मैं चाय के लिए १ दूध लेने किचन को जा रहा था कि मैंने इसे भीगते हुए पाया। आवाज़ दी, पर यह हिला नहीं। आकर देखा तो मालूम हुआ कि अकड़ गया है।"

और उन्हों गे ठेकेदार के आदमियो से कहा कि वे उसे उठाने की व्यवस्था करें।

इस के दो दिन बाद मैंने किचन को जाते हुए अचानक माहीराम से कहा, "खुदा के लिए इस पीले से बैंगन के पौधे को उखाड़ दो।"

मेरे स्वर की विचित्रता से माहीराम चकित सा होकर मेरी ओर देखने लगा और फिर उसने कहा—"बहुत अच्छा सरकार!"

एरोमा

डाक्टर हरिकुमार मेरे मित्रों में से थे। उनकी गिनती पञ्जाब के प्रसिद्ध दंदानसाज़ों में होती थी। दाँतों के इलाज में जो निपुणता उन्हें प्राप्त थी वह उनके समकालीनों में से कम ही को होगी। बी० एस-सी० की परीक्षा पास करने के बाद वे कलकत्ते चले गये थे और वहाँ से दंदान-साज़ी की शिक्षा पाकर लौटे थे। लाहौर में निस्बत-रोड पर उनकी सर्जरी थी। उनकी ख्याति का सूर्य लाहौर में ही नहीं प्रान्त भर में चमकता था। दूर दूर से लोग इलाज के लिए उनके यहाँ आते थे और स्वास्थ्य-लाभ कर चले जाते थे।

कलकत्ता से आने के बाद अल्प काल में ही, यह सब कुछ हो गया था। उनके साथी मुंह देखते रह गये थे। वे एकएकदाँत के दस दस रुपये ले लेते तो भी लोगों का ताँता बँधा रहता, और दूसरों के यहाँ एक एक रुपया पर भी कोई न फटकता था। वास्तव में डाक्टर हरिकुमार का चातुर्य हाथों की अपेक्षा उनकी ज़बान में अधिक था। यदि किसी का काम बिगड़ जाता, तो ऐसी बातों से उसका घर पूरा कर देते कि उपेक्षा करने के बदले वह उनकी सहृदयता की दाद देता हुआ वापस जाता।

प्राणनाथ डाक्टर साहब के सहकारी का नाम था। मालिक और नौकर का नाता होने पर भी दोनों में प्रगाढ़-प्रेम था। दोनों बचपन में साथ साथ खेले थे, स्कूल और कालेज में साथ साथ पढ़े थे। दोनों इकट्ठा खाना खाते, इकट्ठे सिनेमा देखने जाते और इकट्ठे काम करते। हरिकुमार अपने आपको मालिक न समझते थे और न प्राणनाथ अपने को नौकर जानता था, दोनों एकता के तार में बँधे हुए थे।

हरिकुमार धनी-मानी मां-बाप के लड़के थे, कालेज से निकलते ही कलकत्ता चले गये थे। प्राणनाथ के माता-पिता निर्धन थे, इसलिए वें लाहौर के ही एक ददानसाज़ से शिक्षा प्राप्त करने लगा था। डाक्टर हरि-कुमार जब कलकत्ते से वापस आये तो उन्हें प्राणनाथ की कुशलता पर आश्चर्य हुआ। उन्हें जो वस्तु धन से मिली थी, प्राणनाथ को वही ग़रीबी ने प्रदान कर दी थी। उसने मुख्य मुख्य अङ्गरेज़ी और अमरीकी डाक्टरों की पुस्तकों का अध्ययन किया था, उनके एक एक शब्द को बार बार पढ़ा था और कंठस्थ कर लिया था। प्राणनाथ को ऐसे ऐसे देशी और विदेशी नुस्खे याद थे जो हरिकुमार के देवताओं को भी न ज्ञात होंगे। डाक्टर साहब ने इस बात को जान लिया था और उन्होंने प्राणनाथ को अपने यहाँ उपयुक्त वेतन पर सहकारी के रूप में रख लिया था।

डाक्टर हरिकुमार की ख्याति का एक रहस्य यह भी था।

सर्दी के दिन थे, सुबह का समय था, किन्तु डाक्टर हरिकुमार सिर्फ़ कमीज़ पहने कमरे में घूम रहे थे। उनके चेहरे से परेशानी टपक रही थी। उन्होने उस लम्बे कमरे का अन्तिम चक्कर लगाया और सर्जरी में चले गये। दो घण्टों से वे एक पीड़िता की दाढ़ की किरचें निकालने का प्रयास कर रहे थे, पर उन्हें सफलता न मिल रही थी। किरचें निकालना मुश्किल हो, यह बात न थी। उन्होंने प्रायः उनसे भी सूक्ष्म किरचें पलक झपकते निकाल दी थीं, परन्तु रोगिणी इंजेक्शन कराने से घबराती थी, पिचकारी और सुई की सूरत देखते ही वह अचेत होने लगती थी। जड़ें खोखली थीं और दाढ़ जीर्ण-शीर्ण। जहाँ भी डाक्टर उसे जम्बूर से पकड़ते, वहीं टूट जाती। अब यह हालत हो गई थी कि औज़ार के लगते ही वह तड़प उठती थी। हाथ लगाना तक कठिन हो गया था। जो साधारण इंजेक्शन तक नहीं करने देती, वह मैंडीकुलर कब सहन करेगी

और बिना उसके किरचें निकल न सकती थीं। यही कारण था कि डाक्टर साहब घबरा कर बाहर निकल गये थे। रोगिणी समृद्ध घराने से सम्बन्ध रखती थी और वे इनकार भी न कर सकते थे। सुबह से बिना नहाये-धोये वे उसकी दाढ़ निकालने में लगे थे। उन्हें खून पसीना करके कमाई हुई अपनी ख्याति पर पानी फिरता हुआ दिखाई दिया। चिन्ता और परेशानी के कारण इस शीत में भी उनके माथे पर पसीना आगया।

सर्जरी में फिर प्रवेश करने पर डाक्टर साहब अपनी कुर्सी के समीप कुछ क्षण के लिए मूक, निस्तब्ध खड़े रहे। सामने 'नाइट्रस आक्साइड गैस' का अप्रेटस पड़ा था। किन्तु हरिकुमार उसको गैस से बेहोश करने का साहस न कर सकते थे। वह अत्यन्त दुबली-पतली और कमज़ोर-दिल वाली स्त्री थी। आशंका थी कि गैस से कहीं उसका दम ही न निकल जाय। उन्होंने एक बेर कराहती हुई रोगिणी के चेहरे को देखा और अप्रेटस पर हाथ रक्खे कुर्सी के गिर्द घूमे। ख्याति को बनाये रखने के लिए वे यह जोखम उठाने को तैयार थे।

"शायद यह गैस को सह न सकें।" रोगिणी के पति लाला जुगुल किशोर ने कहा।

डाक्टर साहब का हाथ अप्रेटस से फिसल गया और वे हताश-से खड़े रह गये।

"मेरा ख्याल है, मैं इन्हें अस्पताल ले जाकर साहब को दिखलाऊँ।" लाला जुगुलकिशोर ने कहा।

"नहीं आप इन्हें ज़रा आराम करने दें। मेरा असिस्टेंट प्रयोगशाला में है। उसके आने पर मैं एक ख़ास प्रेपेरेशन तैयार करके किरचें निकाल दूंगा। घबराइए नहीं"। यह कह कर डाक्टर सर्जरी से बाहर निकल आये और अपने प्राइवेट कमरे में जाकर कौच में धँस गये।

यदि लाला जुगुलकिशोर आकृति से मन की बात समझने का तनिक भी ज्ञान रखते तो उन्हें मालूम हो गया होता कि डाक्टर हरिकुमार

बिलकुल झूठ बोल रहे हैं—न डाक्टर साहब इस तरह किरचें निकाल सकते थे और न उनके पास कोई और प्रेपेरेशन ही था। वे केवल कुछ समय चाहते थे, जिसमें वे उनको खुश असलूबी से जवाब देने का बहाना ढूंढ सकें। उन्हें वे इस प्रकार जाने न देना चाहते थे।

डाक्टर साहब कौच पर बैठे हुए सोच रहे थे, पर कुछ सोच न पाते थे। आज उन्हें कुछ कहने के लिए शब्द तक न सूझ रहे थे। उनका अनुभव, उनकी बुद्धि, सब बेकार हो गये थे। रोगिणी इंजेक्शन कराने को राज़ी न थी, गैस वे दे न सकते थे और बिना इनके दांत के उन छोटे छोटे टुकड़ों को निकालना सर्वथा असम्भव सा था। किं-कर्तव्य-विमूढ़-से वे चुप बैठे थे। दीवार पर टँगी हुई घड़ी ने दस बजाये। पन्द्रह मिनट उन्हें इसी असमंजस में बीत गये थे। आखिर वे दीर्घ-निःश्वास छोड़ कर उठे। उन्होंने सोचा, मौके पर जो सूझ पड़ेगा, कह देंगे, और कर ही क्या सकते हैं? उस समय उनके हृदय में एक प्रबल आकांक्षा उठी—काश कोई ऐसी दवा होती जिससे दाँत कष्ट के बिना अपने आप ही निकल जाते!

"डाक्टर जी! डाक्टर जी"!—प्राणनाथ ने प्रसन्नता से विह्वल होकर डाक्टर हरिकुमार के कंधों को थपथपाते हुए कहा।

डाक्टर हरिकुमार ने चिन्ता के कारण झुका हुआ अपना सिर ऊपर उठाया। उनकी व्यथित आँखें उसकी मुसकाराती हुई आँखों से चार हुईं। प्राणनाथ के हाथ ढीले पड़ गये। दूसरे क्षण कौच पर बैठ कर वह डाक्टर साहब के चिन्तित मुख को देखने लगा। अन्दर से रोगिणी के कराहने की आवाज़ आई।

ऐसे अवसर पर डाक्टर साहब सदैव प्राणनाथ से परामर्श किया करते थे। वे बोले, "अजीब समस्या उपस्थित है प्राण! अन्दर सर्जरी में लाला जुगलकिशोर की पत्नी बैठी है। उसकी दायीं दाढ़ जीर्ण-शीर्ण होकर टूट

गई है। वह इंजेक्शन करने नहीं देती और दुर्बलता के कारण मैं उसे गैस देने का साहस नहीं कर सकता। बड़ी उलझन में.........

"बस, बस, अच्छा मौका है," प्राणनाथ ने उनकी बात काटते हुए कहा, "आज़माइश हो जायगी"। और उल्लास से उसका चेहरा दुगुना हो गया।

डाक्टर साहब की समझ में कुछ न आया। वे बुत बने उसकी ओर निर्निमेष तकते रहे।

प्राणनाथ डाक्टर साहब के सम्मुख खड़ा हो गया। उसके चेहरे से गम्भीरता टपकने लगी। उसने जेब से एक शीशी निकाली, जिसमें लाल रंग की कोई गाढ़ी गाढ़ी चीज़ थी। उसने कहा :

"इसमें वह दवा है डाक्टर साहब, जिसकी ज़रूरत आज सारे ससारे को है, जिससे दंदानसाज़ी के क्षेत्र में हलचल मच जायगी, जिसकी एक बूंद रोगी के लिए जादू का असर रखती है। इसके होते गैस या इंजेक्शन की कोई आवश्यकता न होगी। एक बूंद दाँत के ऊपर मांस पर लगा दीजिए, कुछ ही क्षणों में मसूढ़े स्वयं दाँत छोड़ देंगे।"

डाक्टर साहब हँस दिये। बोले, "यह हँसी का समय नहीं कि तुम मजमा लगानेवालों की तरह भाषण दो।"

प्राणनाथ मुस्कराया, फिर अत्यधिक गम्भीर होकर बोला, "हँसी कौन करता है? मेरा आज वर्षों का श्रम ठिकाने लगा है। आज वह दवा तैयार हो गई है जिसका आविष्कार करने के लिए मेरा दिन का चैन और रातों की नींद तक हराम हो गई थी।"

डाक्टर हरिकुमार चुपचाप प्राणनाथ के मुँह की ओर तकते रहे। वे रोगिणी का दुख और अपनी परेशानी, सब भूल गये।

प्राणनाथ ने शीशी की ओर देखते हुए कहा, "और मज़े की बात यह है कि जिस दाँत पर दवाई लगाई जायगी, वही गिरेगा, दूसरे को तनिक भी हानि न पहुँचेगी।"

डाक्टर साहब को उस की बातों पर विश्वास न हुआ। उसके मुख, की मुद्रा गम्भीर थी, पर डाक्टर साहब को विश्वास न होता था। हो भी कैसे सकता? वे कैसे मान जाते कि जिस दवाई को सहस्रों प्रयोगों के बाद यूरोप के मस्तिष्क न तैयार कर सके, उसे लाहौर एक कोने में बैठे उनके असिस्टेंट ने तैयार कर लिया है। प्राण ने उनकी इस उधेड़बुन की ओर ध्यान नहीं दिया। वह उनका हाथ थामे उन्हें सर्जरी में ले गया।

उसने रुई के टुकड़े को शीशी में भिगो कर रोगिनी की दाढ़ के ऊपर दवा लगाई और उसे तश्तरी पर मुँह झुकाने के लिए कहा। कुछ ही क्षणों में दाँत के बदबूदार छोटे छोटे टुकड़े थूक के साथ अपने आप तश्तरी में गिर पड़े और रोगिणी का कष्ट दूर हो गया। हरिकुमार प्राणनाथ के मुँह की ओर टकटकी बाँधे देखते रहे। उन्हें ऐसा लगा, जैसे वे काम करते करते ऊँघ गये हों और स्वप्न में कोई जादूगर उन्हें चमत्कारपूर्ण खेल दिखा रहा हो। भ्रम दूर करने के निमित्त उन्होंने आँखों को मला—खिड़की से बाहर देखा। सब कुछ सत्य था। सामने कुर्सी पर लाला जुगलकिशोर की पत्नी बैठी थीं, उसके मुँह पर शांति की झलक थी, बाहर लाला साहब की कार खड़ी थी और शोफ़र मजे से सिगरेट पी रहा था और धूप की कुछ किरणें खिड़की से छिन छिन कर सर्जरी में आ रही थीं।

कुछ ही समय में 'ऐरोमा' की ख्याति भारत भर में फैल गई। सब पत्रों में उसके विज्ञापन निकलने लगे। सम्पादकों ने उस पर अपनी सम्मतियाँ दीं, उसकी प्रशंसा के पुल बाँध दिये। डाक्टर हरिकुमार को बैठे-बैठाये एक निधि हाथ लग गई। प्राणनाथ सारा दिन प्रयोगशाला में बन्द रहता, दवा तैयार करता; सन्ध्या को वह शीशियों में बन्द कर दी जाती और दूसरे दिन बाहर भेज दी जाती। धन पानी की तरह बरसने लगा।

प्राणनाथ रुपया न लगा सकता था। यह काम उसने डाक्टर साहब

पर छोड़ दिया और दवा तैयार करने का बोझ अपने कंधों पर ले लिया। 'स्मार्ट ऐण्ड को' के नाम से एक कम्पनी की नींव रक्खी गई। दवा का नाम 'ऐरोमा' रक्खा गया। कुछ ही महीनों में देश-विदेश में दवा के चर्चे होने लगे। रसायन-क्षेत्र में शोर मच गया। लोग दो रुपये की एक शीशी मँगाते और अपने तो क्या, अपने पड़ोसियों तक के दाँत निकाल देते। दवा की ईजाद किसने की है, इस बात का ठीक ठीक पता किसी को न था। तरह तरह के अनुमान भिड़ाये जाते थे। कोई डाक्टर हरिकुमार को उसका आविष्कारक बताता, कोई कहता उन्होंने जर्मनी से केमिस्ट (रसायनिक) बुलवाया है। किन्तु प्राणनाथ का नाम तक कोई न लेता था। चाँदी का रुपया ताँबे के सम्मिश्रण से झंकृत होता है, किन्तु नाम चाँदी का ही होता है, ताँबे को कोई नहीं पूछता।

डाक्टर हरिकुमार इन अफ़वाहों को सुनते और चाहते—कैसा अच्छा होता यदि मैं इस दवा का आविष्कारक होता। एक बड़ा भारी कारख़ाना खोलता। सारे संसार में मेरी ख्याति की बिजली कौंध जाती। लोग चिरकाल तक मेरे नाम को स्मरण रखते। उनका चित्त दिन दिन महत्वाकांक्षा और स्वार्थ के अथाह सागर में डूबता उतराता। मन की नाव चिंताओं के भँवर में डगमगाया करती। उन्हें खटका लगा रहता—कहीं आज प्राण मुझसे सम्बंध-विच्छेद न कर ले। सोचते—यदि प्राणनाथ मुझसे अलग हो गया तो कहीं का न रहूँगा, सारी ख्याति मिट्टी में मिल जायगी। भविष्य का सुन्दर और सुनहरा दुर्ग क्षण भर में धराशायी हो जायगा और प्राणनाथ... वह ऐश करेगा। सिद्धि और विलास उसके पाँव चूमेंगे। संसार उसकी प्रशंसा करेगा। पत्र उसके फ़ोटो छापेंगे। रुपया मैंने लगाया। प्रयोग करने के लिए प्रयोगशाला मैंने दी। अब वह मुझे अलग कर देगा। दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकेगा।

डाक्टर साहब को इस अल्पकाल में ही सहस्रों रुपये मिल चुके थे, पर उनका सन्देह किसी प्रकार दूर न होता था। पहले दिन उन्होंने किवाड़ के छेद से प्राणनाथ को नोट-बुक से कुछ देखकर दवा तैयार

करते देखा था, परन्तु बाद को वह नोट-बुक उन्हें कभी दिखाई न दी। प्राणनाथ को दवा का नुस्ख़ा कंठस्थ था, नोट-बुक की अब उसे आवश्यकता ही न थी। फिर भी डाक्टर हरिकुमार को ज्ञात था कि नोट-बुक उसकी अन्दर की जेब मे रहती है। प्रयोगशाला में उसके कपड़े और होते और बाहर और, किन्तु वह उन्हें बदलते समय सावधानी से नोट-बुक भी निकाल लेता। डाक्टर साहब इस सुअवसर की ताक में थे कि वह नोट-बुक भूल जाय, पर आज तक वह अवसर न आया था।

प्रकट में वे उससे हँस हँस कर बातें करते। आधे भाग की जगह उसे कुछ अधिक ही देते। हर उत्सव पर उसके घर कुछ न कुछ भेज देते। उसके माता-पिता को अपने यहाँ आमन्त्रित करते, किन्तु अन्तर में जलते रहते। सनका हृदय सदैव ईर्ष्या और स्वार्थ की अग्नि में भुना करता।

प्राणनाथ की भोली-भाली सूरत उन्हें ज़हर लगती। प्रतिक्षण उससे दवा का रहस्य पूछने में लगे रहते। कहते, "यार! तुमने कमाल कर दिया। आखिर तुम्हें इसका ख्याल कैसे पैदा हुआ? वही किताबें हमने पढ़ी हैं, वही तुमने, हमें तो कहीं कुछ सुझाई नहीं दिया। प्राणनाथ चुप रहता या मुसकरा देता। अपनी प्रशंसा को सुनकर चुप रहना उसने भलीभाँति सीख लिया था। शायद इसी में उसकी भलाई थी। वह उन पुरुषों में से न था जो प्रशंसा के दो शब्दों से फूलकर कुप्पा हो जाते हैं और फिर खुशामदी जो चाहे, कह देते हैं। डाक्टर हरिकुमार ने इस शस्त्र को निष्फल जाते देखकर दूसरे हथियार से काम लेने की ठानी। उन्होंने प्राणनाथ को मदिरा-पान की लत डालने का प्रयास किया, किन्तु इस प्रयत्न में भी वे निष्फल रहे। प्राणनाथ शराब तो क्या, सिगरेट तक के समीप न गया और डाक्टर हरिकुमार सब अस्त्र चला चुकने पर थक जानेवाले योद्धा की भाँति हारकर बैठ गये।

पर वे निश्चिन्त हो गये हों, यह बात न थी। उनके दिन और रातें इसी समस्या का हल सोचने में गुज़रतीं। उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन

आ गया था। उन्हें अपने शरीर का, अपने स्वास्थ्य का कोई ध्यान न रहा था। ज्यों ज्यों आर्डर अधिक संख्या में आने लगे, उनकी व्याकुलता बढ़ती गई। वे अपने शरीर की ओर से बेपरवाह हो गये थे। पहले वे प्रातः उठकर हजामत बनाते, ब्रश करते, नहाते और समय होता तो सैर करने को भी जाते। पर अब 'सवेरे' जब बिस्तर से उठते तब 'सुई घड़ी की सवा नौ पै थी' वाला हाल होता। कई कई दिन तक बाल न बनवाये जाते। कपड़े मैले हैं, पर बदलने की इच्छा नहीं होती। निजी काम भी प्रायः चौपट हुआ जा रहा था, पर उनको उसकी सुध तक न थी। यह सब कुछ था, परन्तु प्राणनाथ के साथ उनके व्यवहार में कोई अन्तर न आया था। उससे वे सदैव मुस्कराते हुए मिलते। उसकी सेवा-शुश्रूषा में कोई कमी न होने पाती। क़साई जानवर को पाल रहा था, पर साथ ही छुरा भी तेज़ किये जा रहा था।

संध्या का समय था। हरिकुमार ड्राइङ्ग रूम में बैठे दवा फ़रोशों के सूचीपत्र देख रहे थे। सहसा उनकी आँखों में एक चमक पैदा हुई। उन्होंने सूचीपत्र को साथ लिया और मोटर में सवार होकर माल-रोड की ओर चले गये। 'ऐमनीशिया!' 'ऐमनीशिया!' उन्होंने दो बार इस दवा का नाम दोहराया। इसकी एक बूंद का बीसवाँ हिस्सा उनकी मनोकामना को पूरा कर सकता था। दवा की शीशी कोट की भीतरी जेब में दबाये हुए डाक्टर साहब अपनी कोठी में दाख़िल हुए,—उस सेना-नायक की भाँति जिसे दुश्मन को परास्त करने का कोई सुगम साधन हाथ आ गया हो।

प्राणनाथ डाक्टर साहब के साथ बैठा नाश्ता कर रहा था। नींबू के शरबत को पीते हुए उसने जरा मुंह तरेर कर कहा, "जाने इसका ज़ायका कैसा है"? पर प्यास उसे इतनी अधिक थी कि गिलास का अधिकांश पेय वह समाप्त कर चुका था।

गिलास को मेज़ पर रखते ही उसका सिर चकराया और वह कुर्सी पर पीछे को लेट गया और उसकी आंखें बन्द हो गईं।

डाक्टर साहब ने झट उसके कोट की जेब से नोट बुक निकाली, जल्द जल्द उसके पन्ने पलटे, एक पृष्ठ पर उन्हें लिखा दिखाई दिया—'एरोमा'। इन्होंने झट वह पृष्ठ फाड़कर नोट-बुक को वहीं रख दिया।

कुछ क्षण बाद प्राणनाथ का होश आया। पर कापी उसकी जेब में थी, वह आश्वस्त हो गया।

"जाने मेरा सिर क्यों चकरा गया?" प्राण बोला।

'तुम बहुत काम करते हो।" डाक्टर साहब ने धक-धक करते अपने दिल को काबू में रख, नींबू के शरबत का एक लम्बा घूंट भरते हुए कहा।

"जाने इस शरबत में क्या था? लगा कि सारी नसें एकदम शिथिल पड़ गईं।"

हरिकुमार को लगा, जैसे उनका दिल बाहर निकल आयेगा, उन्होंने दवा की एक बूंद प्राण के गिलास में डाल दी थी। हँसते हुए उन्होंने कहा —"मैं भी वही पी रहा हूँ, पर मेरी नस नस में जैसे ठण्डक दौड़ गई है और जी चाहने लगा है कि उठकर घूमा जाये। चलो कपड़े बदलो, आओ ज़रा बाज़ार घूम आयें।"

किसी पक्षी को मारने का इरादा करो, वह झट उड़ जायगा। फिर प्राणनाथ तो मनुष्य ही था। वह कैसे डाक्टर हरिकुमार के कुत्सित इरादों को न भांप जाता? उसे कुछ कुछ आशंका अवश्य हो गई थी। जब कपड़े बदलकर वह प्रयोग-शाला से बाहर निकला तो नोट-बुक को उसने बाहर जलती अँगीठी में फेंक दिया। नुस्खा उसे कंठस्थ हो गया था। नोट-बुक की उसे कोई ज़रूरत न थी।

रात को डाक्टर हरिकुमार सो न सके। बीसियों सुख-स्वप्न देखते रहे। उन्होंने कांटे को परे हटाकर मार्ग साफ़ करने का इरादा कर लिया था। अब उनका नाम 'ऐरोमा' के आविश्कारक की हैसियत से प्रसिद्ध होगा। उनकी ख्याति का पक्षी पंख लगाकर संसार के चारों कोनों में

उड़ेगा। पहले वे डाक्टर थे, केवल डाक्टर, अब वे 'ऐरोमा के आविष्कारक' होंगे, उस ऐरोमा के—जिसने दुनिया में तहलका मचा दिया था।

दिन गुज़रते गये।

प्राणनाथ को एक तरह से उन्होंने विवश कर दिया था कि वह स्थाई रूप से उनके यहाँ आकर रहे। वे उसके भोजन में 'टार्कल' की एक मात्रा देने लगे। यही एक ऐसा विष था जिससे वे प्राणनाथ को बे-खटके अपने मार्ग से परे हटा सकते थे। इस विष की एक एक ख़ूराक शरीर के अन्दर इकट्ठी होती रहती है और खानेवाले को पता भी नहीं होता, किन्तु जिस दिन उसकी दो ख़ूराकें दी जायँ, उसी दिन सब विष अपनी सम्मिलित-शक्ति से अपने शिकार पर आक्रमण करता है और उसकी जान लिये बिना नहीं छोड़ता।

शनि का दिन था। लाहौर में 'बलिदान' चित्रपट ने सनसनी पैदा कर दी थी। शहर में पहली बार ही यह फ़िल्म 'केपिटल' में लगी थी। प्राण-नाथ ने भी यह खेल देखने का इरादा प्रकट किया। डाक्टर साहब ने इस अवसर को उपयुक्त जाना। खाने के साथ विष की दो ख़ूराकें दे दीं। प्राणनाथ खेल देखने चला गया। डाक्टर साहब ने सिर दर्द का बहाना करके साथ जाने से इनकार कर दिया।

आज न जाने कितनों को सिनेमा-हाल से निराश लौटना पड़ा था। देखने वाले बुत बने देख रहे थे। प्राणनाथ की निगाहें चित्रपट पर जमी हुई थीं। प्रेमिका की मुहब्बत और देश के प्रति उसके कर्त्तव्य दोनों में युद्ध छिड़ा था। प्राणनाथ का दिल धड़क रहा था। ज़हर धीरे धीरे अपना असर कर रहा था। आखिर नायक ने देश-प्रेम का छोड़ प्रेयसी के आँचल की शरण ली। पर उसकी प्रेयसी ने उससे मिलने से इनकार कर दिया। प्राणनाथ ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ा और इसके साथ ही उसका सिर कुर्सी पर लुढ़क गया।

हाल में रोशनी हो गई। 'इंटरवेल' में लोग उठकर बाहर जाने लगे। प्राणनाथ निश्चेष्ट पड़ा रहा। उसके निकट बैठनेवालों ने उसे देखा। समझे, सो रहा है, किन्तु जब उनके वापस आने पर भी वह उसी तरह गति-हीन रहा तो उन्हें आशंका हुई। इसके बाद एकाएक हाल में शोर मच गया। प्राणनाथ मर चुका था। उसका शव बाहर लाया गया। दो-तीन डाक्टर भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने फ़तवा दे दिया कि उसकी मृत्यु हृदय-गति बन्द हो जाने से हुई है। उसकी जेब से 'स्मार्ट ऐंड को' के काग़ज़ निकले। उसे वहाँ पहुँचा दिया गया।

डाक्टर हरिकुमार ने जब प्राणनाथ के शव को देखा तब ढाढ़ें मार कर रोने लगे। उन मगरमच्छ के आँसुओं को सच्चे समझकर दूसरे भी रो पड़े।

'स्मार्ट ऐंड को' की ओर से ऐरोमा का विज्ञापन पूर्व-वत् जारी था, पर बनी हुई दवा की मात्रा दो-चार दिन के आर्डरों ही की भेंट हो चुकी थी। डाक्टर साहब बाद की आई हुई माँगों को पूरा न कर सके थे। प्राणनाथ की मृत्यु पर वे कई दिनों तक उसके घर पर रहे थे। उसके माता-पिता को सान्त्वना देते रहे थे। कहते रहे थे—आपका बच्चा नहीं मरा, मेरा भाई मर गया है—और अपने पाप पर पर्दा डालने के लिए उन्होंने प्राणनाथ के मा-बाप को अपने यहाँ बुलवा लिया था। और उन्हें वहीं रहने को बाध्य कर दिया था। लोग यह देखकर कहते—डाक्टर हरिकुमार आदमी नहीं, देवता हैं।

जब सब ओर शान्ति हो गई तो उन्हें ऐरोमा को तैयार करने की चिन्ता हुई। उन्होंने प्राणनाथ को विष देना तब आरम्भ किया था जब उन्हें ऐरोमा में पड़नेवाली सब वस्तुएँ मिल गई थीं। एक बूटी की कमी थी सो वह भी उन्होंने एक हकीम से पूछ कर मँगा ली थी। प्राणनाथ ने ऐरोमा को तैयार करने में देशी और अँगरेज़ी दवाओं से काम लिया था।

दोपहर का समय था। खिड़की से आने वाली धूप की किरणें मन्द होते होते एकदम बुझ गईं थीं। टेबल पर रक्खी हुई घड़ी की सुइयाँ बारह बजा रही थीं। नौकर तीन बेर खाना खाने के लिए बुलाने आ चुका था, किन्तु डाक्टर साहब ऐरोमा तैयार करने में लीन थे। उनके कपड़े पसीने में भीग चुके थे। नोट-बुक का पृष्ठ उनके हाथ में था और वे उसी के अनुसार काम कर रहे थे। उन्होंने सब बूटियों को मिलाया था। दवाइयों को नुस्खे के अनुसार मिलाकर उन्हें आग पर चढ़ा दिया था। केवल एक दवा रह गई थी और उसे उबलते समय मिलाना था। पन्द्रह मिनट ग़ुजर गये, दवा उबलने लगी। उन्होने मुंह बर्तन के पास ले जाकर उबलती हुई दवा को देखा और दूसरी शीशी उसमें उँड़ेल दी। उसी समय ज़ोर का धमाका हुआ। दवा उबलकर उनके मुंह पर आ पड़ी। डाक्टर साहब का मुंह झुलस गया, आँखें जल गईं, गर्दन और हाथों पर छाले पड़ गये, उनके दाँत झड़ गये और दवा के गले में उतर जाने के कारण वे धरती पर गिरकर तड़पने लगे और इससे पहले कि कोई उनकी सहायता को आता, उनके प्राण-पखेरू उड़ गये।

डाक्टर साहब को यह मालूम न था कि 'फ़ार्नहीट' के कितने दर्जे तक दवा को गर्म करना है, और अधिक खौलने के कारण यह दुर्घटना हो गई थी।

ऐरोमा का नुस्ख़ा उनके हाथ से गिर कर कब का आग की भेंट हो चुका था।

पाप का आरम्भ



हमारी शादी के समय वे बी० ए० की परीक्षा दे चुके थे, डिगरी भी मिल गई थी पर नौकरी कहीं न मिली थी। नौकरी का मिलना आसान भी तो नहीं। पर थे धुन के पक्के, कहीं न कहीं प्राइवेट रूप से काम करते रहे। पहले पहल तो मेरे साथ उनका बर्ताव बड़ा अच्छा रहा। उनके प्रेम का उन्माद हर समय मुझे घेरे रहता। वे ऐसी बातें करते जो मेरी समझ से परे होतीं। वे कहते "लज्जा !" और मैं उनकी ओर देखने लगती। उनके स्वर में कुछ ऐसा कम्पन, ऐसी हकलाहट, कुछ ऐसा जादू होता कि मेरे तन मन में एक सिहरन सी दौड़ जाती। उनकी आंखों में कुछ ऐसी मस्ती होती और वे अचानक, बेताब होकर, मुझे इस तरह पकड़ लेते कि मैं डर सी जाती। मेरी नस नस काँप सी उठती और फिर वे मुझे अपने बाजुओं में भींच कर चूम लेते। लेकिन धीरे धीरे मैं इन बातों की अभ्यस्त होती गई। फिर मुझे इनमें कुछ अजीब सा रस भी मिलने लगा और फिर मैं स्वयं इनके लिए लालायित रहने लगी। न केवल यह, बल्कि मैं स्वयं इनमें पहल करने लगीं। वे दिन भर मारे मारे फिरते—दो तीन घण्टे किसी फर्म में काम करते, दो एक जगह पार्ट-टाइम टाईपिस्ट की ड्यूटी बजाते, फिर शेष वक्त ट्यूशनें पढ़ाते। सांझ को हारे थके आते और खाना खाते ही सो जाते। मैं चाहती, वे मुझसे उसी तरह प्रेम करें। वे मजबूर थे। मैं उन्हें छेड़ती और वे 'ऊँहू' करके करवट बदल लेते, उन्हें जगाती, वे झिड़क कर सो जाते और मेरे मन में डर सा समा जाता। कहीं उनका मन दूसरी ओर तो नहीं चला गया। ज्यों ज्यों मैं सोचती गई मेरे मन में एक अजीब सा सन्देह घर करता गया। उन्ही दिनों उन्होंने लड़कियों का एक स्कूल खोला।

असल में इसका विचार तो उनके दिल में बहुत पहले से था, पर उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए उन्हें आवश्यक सहायता न मिल पा रही थी। अक्सर वे कहा करते, "लज्जा, तुम यदि पढ़ी-लिखी होतीं, तो रोटी का यह मसला कबका हल हो चुका होता। मर्द के लिए लड़कियों का स्कूल खोलना उतना ही कठिन है, जितना कि औरत के लिए लड़कों का स्कूल खोलना। बल्कि मर्द के लिए लड़कियों का स्कूल खोलना और भी कठिन है। हाँ यदि कोई चलती औरत साथ हो तो यह मुश्किल आसान हो जाती है।" इस बार उन्हें यह सहायता भी मिल गई। वे कुछ दिनों जिला बोर्ड गर्ल्स स्कूल की हेडमिस्ट्रेस को अंग्रेजी पढ़ाने लगे थे। उनके कोई लड़का न था। मैंने सुना कि वे उनको लड़के की तरह प्यार करने लगी हैं। 'बीबी जी' की कोशिशों से (उनको वे 'बीबी जी' कहा करते थे) उन्होंने अपनी स्कीम को व्यवहार में लाने का निश्चय किया। उन्हीं की मदद से लड़कियाँ आईं। हमें रहने के लिए उन्होंने अपने घर का एक हिस्सा दे दिया। और यहीं से मेरे दुर्भाग्य की कहानी शुरू हुई।

यहाँ आकर उनका अधिक से अधिक समय बीबी जी के कमरे में ही बीतने लगा। मैं अपने कमरे में उदास बैठी रहती। मैंने कई बार उनसे कहा भी कि आखिर सारा सारा दिन और आधी आधी रात तक आप उधर क्यों बैठे रहते हैं। लेकिन वे हमेशा कह दिया करते, "तुम क्या जानो। स्कूल का चलाना क्या आसान बात है। सौ गुत्थियाँ सुलझानी होती हैं; सौ बातें उनसे पूछनी होती हैं, सौ बातों में परामर्श लेना होता है।" मैं मान लेती और खामोश हो जाती और वे मेरे गाल पर हल्का सा थपेड़ा लगाकर मुझे चूम लेते।

उदासी दूर करने के लिए मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। उन्होंने भी कई बार ऐसी इच्छा प्रकट की थी कि अगर मैं पढ़ जाऊँ तो स्कूल अच्छी तरह चल सकता है। मैंने "रत्न" की तैयारी शुरू कर दी। एक युवक उनसे अंग्रेजी पढ़ने आते थे। शास्त्री थे और मैट्रिक की परीक्षा दे

चुके थे—अब एफ० ए० के लिए तैयारी कर रहे थे, नाम था बलवन्त। मैं उन्हीं से हिन्दी पढ़ने लगी।

बलवन्त नौजवान थे, हँसमुख थे, कुछ बातूनी भी, लेकिन थे बड़े भले मानुस। पढ़ाई के बीच में कभी उन्होंने आँखें उपर न उठाईं। मैं जब भी उन्हें देखती, किताब पर दृष्टि जमाये पाती। धीरे धीरे बोलते और पढ़ा चुकने के बाद कभी देर तक न ठहरते। छः माह पढ़कर ही मैंने 'रत्न' का इमतिहान दे दिया और अच्छे नम्बरों से पास हो गई। तब मैंने 'भूषण' की किताबें मँगा लीं। लेकिन इसी बीच एक ऐसी बात हो गई जिसने मेरी ज़िन्दगी की धारा ही मोड़ दी।

जैसा मैं कह चुकी हूँ वे ज्यादातर 'बीबी जी' के कमरे में रहते थे। जब तक मैं परीक्षा में व्यस्त थी, मैंने उस ओर कुछ ध्यान न दिया। बलवन्त जी कुछ दिनों के लिए अपने गाँव चले गये और मेरा मन फिर उदास रहने लगा। मैंने मास्टर जी को (अपने पति को मैं मास्टर जी कहती थी) अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश की, पर उन्होंने कोई ध्यान न दिया। हमेशा टालते रहे। मेरा सोया हुआ सन्देह फिर जाग उठा। मैं छिपे छिपे उन पर नज़र रखने लगी। मकान के जिस भाग में हम रहते थे वह 'बीबी जी' के हिस्से से बिल्कुल अलग था। सीढ़ियाँ, आँगन—सभी अलग थे। लेकिन जिस कमरे में 'बीबी जी' रहती थीं, वह मेरे सामान के कमरे के साथ था। बीच में सिर्फ एक लकड़ी की दीवाल थी। उसमें धीरे धीरे मैंने एक छेद बनाना शुरू कर दिया।

बरसात की रात थी। ज़रा ज़रा सर्दी हो चली थी। और ठंडी हवा के झोंके अन्दर आ रहे थे। मेरे दिल को न जाने क्या हो रहा था। मैं चाहती थी कि वे आ जायँ, पर वे न आये। ग्यारह बज गये। मैं सामान के कमरे में आ गई और धीरे धीरे छेद बड़ा करने लगी। इस बार पतला सा सूराख़ हो गया। इतना सूराख़ बन गया कि उसमें से दूसरे कमरे की गतिविधि को देखा जा सके। ज़रा सांस लेकर मैंने सूराख़ में से

देखा और काँप उठी। वे और 'बीबी जी' एक ही बिस्तर पर सोये हुए थे और 'बीबी जी' का हाथ उनके गले मे पड़ा था।

मैंने कहा "मुझसे यह सब न देखा जायगा। यह सब क्या हो रहा है?" वे मौन खड़े रहे फिर बोले "कुछ बात भी हो"!

हमारी आँखें चार हुईं और उनका रंग कुछ फीका पढ़ गया। मैं ने कहा—

"जो कुछ इतनी देर से हो रहा है और जो कल रात हुआ।"

"उनका रंग और फीका पड़ गया। गुस्से से बोले, "क्या हो रहा है और क्या हुआ?"

"मेरे ही मुँह से सुनना चाहते हो?"

वे खामोश रहे। उस क्षण मेरे सारे शरीर में आग सी लगी हुई थी। रात का वह दृश्य देखने के बाद मैं देर तक वहाँ खड़ी रही थी। मुझे अपनी आंखों पर विश्वास न हो रहा था। लेकिन नहीं, वे 'बीबी जी' के पलंग पर सोये हुए थे और 'बीबी जी' का हाथ उनकी गर्दन में पड़ा था। मैंने एक बार फिर देखा। ईर्ष्या से मेरी आंखों में खून सा उतर आया। जी में आई कि अभी जाकर पूछूं, ""इस पापाचार के लिए ढोंग की क्या आवश्यकता है। क्यों नहीं खुले-बन्दों प्रेम का बाज़ार गर्म किया जाता। पत्नी—पत्नी क्या कर सकती है—संस्कारों, उपदेशों और धर्म की जंज़ीरों में जकड़ी हुई वह अपने पति को बुराई की तरफ जाने से रोक नहीं सकती। पतिव्रत धर्म का तगादा है कि पति चाहे जो करे पत्नी उसके किसी काम में दखल न दे। बल्कि अपनी शक्ति भर उसके सभी अच्छे और बुरे कामों में सहायता भी करे।—मैंने एक लम्बी सांस ली। शरीर में कुछ थकन सी लगी। एक बार मैंने फिर उसी सूराख में देखा। इर्ष्या बहती हुई आग सरीखी नस नस में दौड़ गयी। जी में

आया—जाऊँ और वहीं कमरे में जाकर अपना सिर फोड़लूँ। मर जाऊँ। लेकिन फिर सोचा कि उनसे सब हाल पूछ लूँ। उनसे साफ़ साफ़ कह दूँ कि मैं यह सब नहीं सह सकती। यदि वे न मानें तो मर जाऊँगी और दिखा दूँगी कि अपनी बीवी की छाती पर मूँग दलने का परिणाम कितना भयानक हो सकता है। मैं अपने कमरे में आ गई और बिस्तर पर पड़ी बड़ी देर तक रोती रही। बारह बजे, फिर एक और फिर दो बजे। मैं उनकी प्रतीक्षा करती रही, लेकिन वे न आये। फिर एक बार हृदय में टीस सी उठी। फिर सामान के कमरे में ट्रंक और गठड़ियों को फलांगती हुई दीवार के पास आई। देखा कि वह अभी तक उसी तरह सोये हुए थे। फ़र्क सिर्फ इतना था कि अब उनका हाथ 'बीबी जी' की गर्दन के गिर्द था। बेबसी, शोक और गुस्से की आग में जलती हुई मैं वापस आ गई। कई तरह के विचार मेरे मन में आ रहे थे। बाहर वर्षा हो रही थी। सर्दी भी ज़्यादा हो गई थी, लेकिन मैंने दुपट्टा तक न ओढ़ा। उसी तरह बिस्तर पर पड़ी रही। सुबह हो गई, छः, सात और फिर आठ बज गये। तब वे उसी तरफ़ से नहा धोकर आये। मेरा सिर दुख रहा था। मानसिक कष्ट और सिर के दर्द के मारे मैं तिलमिला रही थी। मैंने निश्चय कर लिया था कि चुप रह कर मैं यह सब बर्दाश्त न करूँगी! मेरी छाती पर मूँग दले जायँ और मैं ख़ामोश रहूँ, यह न होगा। इस लिए उनके आते ही झगड़ा हो गया।

वे चुप थे।

मैंने कहा, "चुप क्यों हो। साफ़ साफ़ क्यों नहीं कह देते कि आपको मेरी ज़रूरत नहीं है।"

वे बोले, "आखिर तुम्हें होक्या गया है? जो बात है, साफ़ साफ़ कहो। पहेलियाँ बुझवाने से क्या फायदा?"

"रात को आप कहाँ सोये थे?"

"वहीं, उधर ही सो गया था।"

"अकेले?"

एक क्षण के लिए वे चुप रहे फिर बोले, "हाँ, क्यों ?"

"वे आप के साथ नहीं सोई थीं? और आप रोज़ इकट्ठे नहीं सोते ?"

उन्होंने एक ज़ोर का ठहाका लगाया, "अच्छा यह बात है,तुम भी...मैं कहता हूँ लज्जा...तुमसे परमात्मा ही समझे। भला इतनी सी मामूली बात पर तुमने तूफ़ान मचा दिया। अगर वे भी बिस्तर पर सोई हुई थीं तो क्या बात है। रात देर तक काम करता रहा। दिन भर का थका था वहीं नींद आ गई। चारपाई एक ही थी। वे भी वहीं लेट गई होंगी। मामूली बात है। वे मुझे अपना बच्चा समझती हैं।" यह कहकर उन्होंने रोज़ की तरह मेरे गाल पर एक हल्की सी चपत लगाई और मुझे चूमने को अपनी ओर खींचा।

पर मैं तड़प कर उनकी बाहों से निकल गई—"तो वे आपको अपना बच्चा समझती हैं ?" मैं चीख़ी।

"हाँ !"

"और आप उन्हें माँ के बराबर समझते हैं ?"

उन्होंने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। बोले, "आखिर आज तुम कैसी बेवकूफ़ों की सी बातें करती हो। उठो, खाना बनाओ, मुझे भूख लग रही है।"

मुझ पर न जाने कैसा हठ का भूत सवार था। सिर फटा सा जा रहा था, पर उसकी परवाह न कर के मैंने कहा, "मेरी बात का जवाब दो !

"आखिर तुम क्या पूछना चाहती हो ?"

"यही जो मैंने पूछा।"

"तुम क्या समझती हो ?"

"मैं चाहे जो समझूँ, आप क्या समझते हैं ?"

उन्होंने बात का रुख पलटने के लिए कहा, "तुम जो समझती हो वही मैं समझता हूँ।"

मुझे विश्वास हो गया कि उनके मन में चोर है। वे उन्हें 'माँ' न कह सकते थे। मेरे प्रश्न का उत्तर देने में उन्हें इसीलिए हिचकिचाहट थी। उनमें इतनी हिम्मत न थी कि सच बात कह देते। किन्तु मैं इस तरह पीछा न छोड़ना चाहती थी। रात जो कुछ मैंने देखा था वह सब भयानक स्वप्न सा मेरी आँखों के सामने घूम गया। जी तो चाहता था कि जाकर छत से कूद जाऊँ, पर क्रोध को बरबस रोक मैंने केवल इतना कहा—"अच्छा आप जो चाहें समझें, लेकिन अब आप ज्यादा देर तक वहाँ न रहें।"

"काम होता है।"

"यहाँ ले आयें।"

"उनसे सलाह लेनी होती है।"

"यहाँ बुलाकर कर ले लिया करें।"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"नहीं हो सकता", मैंने उनकी ओर देखा। पर अनायास मेरी आंखों में आँसू उमड़ आये।

"नहीं हो सकता", उन्होंने बेपरवाही से कहा। मेरे तन मन में फिर आग लग गई। मैं अपने को रोक न सकी। मैंने रोते हुए कहा, "तो फिर यह माँ बच्चे का ढोंग छोड़ दीजिए। खुलकर खेलिए। मुझे मैके छोड़ आइए या फिर ज़हर ला दीजिए। इसके बाद वहाँ दिन रात रहिए। एक बिस्तर पर सोइए। गले में बाहें डालकर सोइए। न कोई देखने आयगा, न पूछने।"

वे गुस्से से काँपने लगे। पास पड़ी हुई छड़ी उठा ली और तड़ातड़ मुझे पीटने लगे। गालियाँ भी दीं। छड़ी टूट गई तो लातों और घूंसों से काम लिया। फिर थक कर अन्दर चले गये।

वैवाहिक जीवन में यह पहला अवसर था जब मुझे पीटा गया। एक तो सौत को सीने पर ला बैठाया दूसरे मार! क्रोध और क्षोभ से मेरी नस नस जलने लगी। लेकिन मैं चीखी नहीं, चिल्लाई नहीं, हाँ आंखों को काबू में न रख सकी।

कुछ क्षण बाद बोले, "चलो तुम्हें मैके छोड़ आऊँ।"

लेकिन इस तरह घर को आग लगते देखकर निकल जाना मुझे स्वीकार न था। वे न जाने क्या क्या कहते रहे, गालियाँ देते और बकते झकते, मेरा सामान तैयार करते रहे। ट्रंक तक उन्होंने बाहर ला रखा। लेकिन मैं उसी तरह चौखट पर जमी रही। उस समय मेरी दशा उस बच्चे की सी थी, जिसे साथ न खेलाया जाय और जो वहीं बैठ जाय कि न खेलूगा और न खेलने दूंगा।

बलवन्त जी गाँव से वापस आ गये थे। मैं 'भूषण' की तैयारी करने लगी। उस ओर से ध्यान हटाने का सबसे अच्छा तरीका पढ़ाई ही थी। मैं दिन-रात किताबें पढ़ने में व्यस्त रहती। वे उस रोज़ के बाद कुछ सम्हल गये थे, पर अपना ढंग उन्होंने छोड़ा न था। उधर वे रोज़ाना जाते, लेकिन देर तक न ठहरते। अब वे भी कभी कभी इधर आ निकलती थीं। मुझसे भी उनका स्नेह बढ़ गया था। कोई तीस साल की उमर होगी। रंग गोरा, तीखी चितवन और ऐसी सुन्दर कि देख देख कर जी न भरता था। बस, एक बार देखो तो देखते ही रहो। आंखों में ग़ज़ब का आकर्षण और मुस्कराहट में जादू था। थीं तो विधवा, पर सुहागिनों की तरह शृंगार करती थीं। मुझे अब अपनी छोटी बहन की तरह प्यार करती थीं। कुछ न कुछ रोज़ पहुँचा देतीं। एक महीने के अन्दर एक-दो उम्दा धोतियाँ और एक सुन्दर साड़ी भी लेकर उन्होंने भेजी। मैं उनसे हँसती-बोलती, कभी मैंने उन पर प्रकट न होने दिया कि मुझे उनसे किसी प्रकार की शिकायत है। पर इतनी भोली न रही थी कि इन बातों को न समझती, बल्कि मन में जो सन्देह था, वह और भी पक्का हो गया।

एक दिन वे देर से घर आये। मुझे विश्वास था कि वे उधर ही बैठे रहे होंगे। इसलिए ज़्यादा कुरेदना ठीक न समझा, सिर्फ इतना ही पूछा, "उधर से आ रहे हो, तबीयत तो ठीक है न।"

"हाँ", उन्होंने जवाब दिया, "बातें करते देर हो गई थी"। इतना कह कर वे कपड़े बदलकर बाहर जाने को तैयार हो गये। मैंने कहा, "खाना तो खाते जाओ।"

उन्होंने जल्दीसे छड़ी उठाते हुए कहा, "एक दोस्त के घर दावत है।"

"साढ़े दस बजे किसके यहाँ दावत है?" मैं रुक न सकी, पूछ ही बैठी।

वे इस प्रश्न का उत्तर न दे सके। मैं ऐसा प्रश्न करूँगी, शायद यह उन्होंने सोचा ही न था। क्षण भर बाद कुछ रुकते से बोले, "प्यारे लाल के घर।"

"क्यों वहाँ क्या है आज?"

वे चिढ़ उठे। गुस्से से बोले "तुम्हें इससे क्या! हर बात में मीन-मेख़ निकालती हो। है क्या? आज उनका भाई वकालत के इमतिहान में पास हुआ है, बस!"

यह कहकर वे खट-खट सीढ़ीयाँ उतर गये। लेकिन मुझे विश्वास न हुआ। उनका चेहरा उनके कथन की गवाही न देता था। कोई बीस मिनट बाद मैं नीचे उतरी। जहाँ स्कूल लगता था, वहीं एक कमरे में बुढ़िया माई सोई थी। उसे जगाया और प्यारेलाल के घर जाने को कहा।

माई बड़बड़ाती हुई उठी, "क्या काम है बहू इतनी रात गये।"

"ज़रा जाना और देख आना कि वे वहीं दावत खा रहे हैं या कहीं और चले गये हैं। हों तो कहना कि वहाँ से सीधे घर आयें। कहना बहू का जी ठीक नहीं, ज्यादा देर न लगायें। प्यारेलाल का भाई वकालत पास हुआ है न, उसने दावत की है, वहीं गये हुए हैं।"

माई चली गई और वही जवाब लेकर आई जिसकी मुझे उम्मीद थी। न तो वे प्यारेलाल के यहाँ थे और न प्यारेलाल के भाई ने वकालत पास की थी। वकालत का नतीजा निकलने में अभी दो दिन बाकी थे। एकाएक ख्याल आ जाने से सामान वाले कमरे में गई। सूराख से देखा वहाँ का नक़्शा ही बदला था। जो कमरा सिर्फ सोने के लिए था, वह अच्छा खासा बैठका बना हुआ था। फर्श पर दरी बिछी थी। एक तरफ मेज़-कुर्सी रखी थी और बिजली का बल्ब लटक रहा था। मेज़ के पास दो कुर्सियां रखी थीं। कोने में आराम-कुर्सी पड़ी थी। मैं निराश होकर वापस आ गई। मेरा ख्याल था, वे वहीं होंगे। लेकिन वहाँ कोई न था, पर मुझे विश्वास था कि वे दूसरे कमरे में होंगे। यदि मैं चाहती तो जाकर देख आती। लेकिन मैं इस तरह जाना न चाहती थी। बल्कि छिपकर सब देख लेना और फिर इन्हें जता देना चाहती थी कि मुझे इस तरह बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता।

माई ने कहा, "क्या मैं जा सकती हूँ?"

"अभी कुछ देर ठहरो।"

माई कुछ देर खामोश खड़ी रही। मैंने कहा "ज़रा रामू को तो बुला लाओ।"

रामू बीबी जी का नौकर था। माई उसे बुलाने चली गई।

दस मिनट बाद रामू आ गया। ये दस मिनट दस वर्षों से बीते। मैं उसे अन्दर ले गई। थोड़ी सी मिठाई जो इनके दोस्त के घर से आई थी, रसोई-घर में रखी थी। वह सब मैंने उसे दे दी। कहा कि यह सब तुम्हारे लिए रखी थी, इसे ले जाओ, नहीं पड़ी पड़ी खराब हो जायगी।

रामू की उमर ग्यारह-बारह साल की रही होगी। मिठाई देखते ही इसका चेहरा खिल उठा। वह जाने को तैयार हुआ तो मैंने बेपरवाही से पूछा, "मास्टर जी उधर ही हैं?"

"नहीं"

"आये भी नहीं ?"

"आये थे।"

"फिर ?"

"बीबी जी के साथ चले गये", यह कहकर वह हँसता हुआ चला गया। इससे अधिक पूछने को ज़रूरत भी न थी। मेरे सन्देह की नींव और भी पक्की हो गई। कुछ क्षण तक मैं चुपचाप खड़ी रही। इसतरह घुल घुल कर मरना—चिंताओं और आंशकाओं का शिकार होना मुझे स्वीकार न था। मैंने फैसला कर कि लिया मैं असल बात का पता लगाकर रहूँगी।"

माई ने फिर पूछा, "बीबी जी, मैं जाऊँ देर हो रही है।"

मैंने कहा, "माई मैं तुमसे सलाह करना चाहती हूँ।"

"जी कहो।"

मैं उसे अन्दर ले गई और उसे रात का सब हाल कह . सुनाया। एक रुपया भी मैंने उसके हाथ पर धर दिया। इस बात को छिपाकर रखने की यह फीस थी। माई की आंखें चमक उठीं। वह चातुरी, जिसे उसने बर-बस छिपा रखा था इसकी आंखों में झलक उठी। लेकिन मैं अपनी धुन में अन्धी हो रही थी। मैंने उस ओर ध्यान न दिया। बुढ़िया कहने लगी "बहू, मैं तो पहले से ही जानती थी। मैंने अपनी आंखोंसे उन्हें गले मिलते देखा है। मैं तुमसे कहना चाहती थी, पर कछ सोच कर चुप रही।"

मैं ईर्ष्या की आग में जल रही थी। बोली, "माई आज वे दोनों फिर कहीं गये हैं। मुझसे कह गये हैं कि दावत में शामिल होना है। लेकिन वहाँ तुम अभी होकर आई हो। दावत-आवत कुछ नहीं है। तुम मुझे किसी तरह पता बता दो कि वे किस जगह हैं। मैं तुम्हारी गुलाम हो जाऊँगी।"

माई ने कहा, "यह कौन सी बात है। यहीं बैठे बैठे अन्दाज़ से बता

सकती हूँ। वे ज़रूर किसी होटल में गये होंगे। या फिर उस मकान में होंगे जो उन्होंने छिपाकर ले रखा है।

मैं चौंकी—"क्या उन्होंने कोई मकान भी ले रखा है ?"

"ले रखा था। अब पता नहीं। उनके पास है या नहीं।"

"अब कहाँ होंगे ?"

"पता लेकर बता सकती हूँ।"

मैंने उसके हाथ में एक रुपया और रखा और कृतज्ञता के साथ उसके हाथ को दबा दिया।

माई की बाछें खिल उठीं। मैंने बच्चों के से अनुरोध से बात दोहराई, "माई किसी तरह पता ले दो। मैं तुम्हारी गुलाम हो जाऊँगी।"

वह चली गई और एक घण्टे के बाद आकर बताया कि वे दिलकुशा होटल में हैं और उन्होंने रात भर के लिए एक कमरा लिया है।

"तुमने कैसे पता लिया ?"

"होटल वाले जान पहचान के हैं। मैंने बातों बातों में उनसे पूछ लिया।"

"मुझे दिखा दो।"

"यह मुश्किल है।"

स्कूल की बुढ़िया माइयां अक्सर औरतों और लड़कियों को बहला-फुसला कर होटलों में ले जाती हैं, यह मैंने सुन रखा था। लेकिन हमारी माई उनमें से एक होगी, यह मैंने कभी, न सोचा था। कोई दूसरा वक्त होता तो मैं उसे जूते लगवा कर बाहर निकलवा देती, पर उस वक्त मैं खुद अपनी गर्ज़ में अन्धी हो रही थी। मेरी दशा उस जुआरी की सी थी जो हर बार हार कर और भी ज्यादा दाव पर लगाये। मैंने बीस रुपये का एक नोट माई के हाथ पर धर दिया।

"तुम होटल वाले को दे दो। उससे कहो कि किसी तरह मुझे उन दोनों को दिखा दे।"

माई राज़ी हो गई। हम दोनों दिलकुशा होटल गये। माई ने किस तरह उसे समझाया, क्या कहा, कितने रुपये दिये—यह सब मुझे कुछ नहीं मालूम। लेकिन जो मैं चाहती थी, हो गया। रात के बारह बजे दर्वाजे के शीशे से मैंने जो देखा, उसे देखकर मैं काँप गई। जी में आया कि शोर मचाऊँ, सिर फोड़ लूँ, लेकिन फिर चली आई। जब हम घर पहुँचे तो किसी घड़ियाल ने एक बजाया।

मैंने माई को अकेले में ले जाकर कहा, "मुझे थोड़ी सी अफ़ीम ला दो।"

"अफीम! क्यों बहू अफीम क्यों?"

"मुझे चाहिए", और यह कह कर माई के हाथ में एक रुपया मैंने रख दिया।

रात मैंने बड़ी बेचैनी से काटी थी। अपनी बेबसी पर सारी रात रोती रही थी। उस दिन मेरी बात का उत्तर देने में उन्हें जो हिचकिचाहट हुई थी उसका मतलब खुल गया था। सारी रात मैं सोचती रही, लेकिन किसी नतीजे पर न पहुँच सकी। मेरे इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि वे बीबी जी को माँ की तरह समझते हैं या नहीं, उनकी ज़बान काँप उठी थी। इसका कारण साफ समझ में आ गया। मुझे यों हेय समझा गया, जैसे मैं दुनिया में हूँ ही नहीं। अगर इसी तरह दूसरी औरतों के साथ रहना था तो मुझे ब्याह कर क्यों लाये। ब्याह ही लाये थे तो मुझे प्यार क्यों किया और इतना प्यार किया था तो फिर यह उपेक्षा, यह अपमान यह दण्ड—ये क्यों! अब कुछ कहूँगी तो पीटी जाऊँगी। छड़ी से मेरी खबर ली जायगी। पत्नी की स्थिति ही क्या है। वह कर ही क्या सकती है? पति चाहे तो उसे मार मार कर अधमरा कर दे, ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ दे, घुल घुल कर मरने के लिए छोड़ दे। चाहे तो उसके सामने मज़े

उड़ाये। उसकी छाती पर मूंग दले। मैंने एक लम्बी साँस ली—इस ज़िन्दगी से तो मौत हजार दर्जे बेहतर है—मैंने सोचा—लेकिन इस तरह खामोशी से मरना मुझे गवारा न था। इसीलिए जब दूसरे दिन दस बजे के करीब वे आये तो मैंने पूछा, "सारी रात दावत होती रही क्या?"

"नहीं, जरा देर हो गई थी। प्यारेलाल ने कहा, यहीं पड़ रहो। इसलिए वहीं लेट गया।"

मुझे इस सफेद झूठ पर गुस्सा आ गया। मैंने कहा, "दावत तो आप कहते हैं प्यारेलाल के घर खा रहे थे, लेकिन दिलकुशा में गुलछर्रे कौन उड़ा रहा था?"

दिलकुशा का नाम सुनते ही वे चौंके, कांपे और उनका रंग पीला पड़ गया। लेकिन तत्काल ही सम्हल कर बोले, "दिलकुशा कौन गया था।"

"आप गये थे और आपके साथ वे थीं जिन्हें आप 'माँ' कहते हैं। मैं आपसे पहले कह चुकी हूँ कि यह ढोंग छोड़ दीजिए। मैं अपनी आँखों से सब कुछ देख आई हूँ। यों मेरी आँखों में आप धूल न झोंक सकेंगे। आप मुझे मारना चाहते हैं, मार डालें। अपने रास्ते से हटाना चाहते हैं, हटा दें। टुकड़े टुकड़े करना चाहते है, कर दें। लेकिन मैं अपनी आँखों के सामने यह सब कुछ न होने दूंगी।"

मैं रोने लगी। उनकी आँखों में ख़ून सा दौड़ गया। लेकिन फिर वे अपने को सम्हाल कर अन्दर चले गये। कुछ देर बाद उन्होंने खामोशी से आकर कहा, "लज्जा, तुम मुझे इस तरह बात बात पर नहीं रोक सकतीं। इस तरह मेरे पावों में ज़ंजीर नहीं डाल सकतीं। अगर मैं होटल में गया तो तुम ऐसी जगह क्यों गईं और किसके साथ गईं?"

"मैं नहीं गई।"

"तुम्हारा चेहरा इसकी गवाही नहीं देता।"

मैं खामोश रही। उन्होंने जोश से कहा, "मुझे मालूम न था कि तुम ने यों पंख निकाल लिये हैं। अभी तुमने खुद कहा कि मैंने अपनी आंखों से

सब कुछ देखा है। तो तुम रात के वक्त होटल में गईं। जाओ, होटलों में जाओ, कोठीखानों में जाओ, जहाँ मर्जी हो जाओ। मैं कुछ न बोलूंगा।"

इतना कहकर वे चले गये। उनके इस लांछन पर मैं सन्न होकर रह गई। एक चोरी, ऊपर से सीना-ज़ोरी। आप दूसरी औरत को साथ लेकर सारी रात होटल में रहते हैं तो कोई बुरा नहीं करते। और मैं अगर उसी होटल में आपको देखने चली गई तो ग़ज़ब हो गया। उनका एक एक शब्द सुई बनकर मेरे दिल को छेदने लगा। दुख और क्षोभ से मैं रो पड़ी। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं उन्हें मर कर दिखा दूंगी उन्हें पता चल जायगा पापी कौन है—मैं या वे।

किन्तु माई ने रुपया वापस देते हुए कहा, "बहू भला यों उदास क्यों होती हो। मैं जानती हूँ, मास्टर जी तुम्हारी परवा नहीं करते हैं। लेकिन मर्द सौ सौ बातें करते हैं। अगर उनकी एक एक बात पर यों रोने को बैठ जाओगी तो कैसे गुज़र होगी।"

मैंने कहा, "नहीं माई, तुम मेरा यह काम कर दो। यह लो, मैं रुपया तुम्हें और देती हूँ। मेरा जी पक गया है। मैं जीने से बेज़ार हूँ। जिस ज़िन्दगी में कोई रस नहीं, जिसकी किसी को परवा नहीं, जिसे कुढ़ कुढ़ खत्म होना है, उसे पाल कर मैं क्या करूँगी।"

"न बहू, इस तरह रो रो कर जी हल्का न करो।" माई ने अपने दुप्पटे के आंचल से मेरे आँसू पोंछते हुए कहा, "तुम खुद अपनी ज़िन्दगी की परवा करोगी तो सारी दुनियां उसकी परवा करेगी। यह तुमने क्या कहा। ये दिन मरने के हैं!"

मैं चुप रही।

बुढ़िया फिर बोली, "तुम भोली हो बहू, इन मर्दों को बस में करना क्या जानो? ज्यों ज्यों तुम इनके गले पड़ती जाओगी, ये तुमसे दूर रहते जायेंगे। लेकिन ज्योंहीं तुम ज़रा दूर हटोगी ये तुम्हारे तलुवे चाटेंगे।"

मैं फिर भी खामोश रही। मैंने सिर्फ एक लम्बी सांस ली। आनायास

मेरी आंखें आइने की ओर गईं। और एक और भी लम्बी सांस मेरे हृदय की गहराई से निकल गई।

माई ने फिर कहा, "बहू मेरी इतनी उमर हुई। मैंने कई औरतों को मौत के मुंह से बचाया। परमात्मा ने मनुष्य को इसी लिए पैदा किया है कि यह दुनिया का और दुनिया की न्यामतों का पूरा फायदा उठाये! उसने यह सब कानून नहीं बनाये जिनसे औरतों पर बहुत सी चीज़ों के दरवाज़े बन्द कर दिये गये है। यह मर्दों के बनाये कानून हैं और तोड़े जा सकते हैं।"

"लेकिन औरत कमज़ोर है।" मैंने उसकी बातों से प्रभावित होते हुए कहा।

"कोई कमजोर नहीं। मुझे ही देखो। मैंने कई मर्दों को नाकों चने चबवाये। बड़े बड़े आदमियों ने इस गरीब के पावों पर नाक रगड़ी है। मर्द की आदत होती है कि वह औरत की क़ीमत उसकी ख़ूबसूरती, अंगों के अनुपात, उसके गोरे रंग और तीखे नक़्श-निगार से नहीं लगाता, बल्कि उस क़ीमत से लगाता है जो दूसरों की नज़रों में उसे हासिल है। तुम अपने आप से बेपरवा रहती हो। मैले कपड़े पहने रहती हो। ज़रा अपने को बदलो। अपना ख़्याल रखो। मास्टर जी को मालूम हो जाय कि तुम भी ख़ूबसूरत हो और कोई तुम पर भी जान छिड़क सकता है। बस, वे तुम्हारे होकर रहेंगे। न भी हुए तो भी मरने से तो अच्छा ही रहेगा। तुम इतनी नादान नहीं कि मेरा मतलब न समझ सको। भला मरने से क्या तुम्हारा उद्देश्य पूरा हो जायगा।"

स्कूल का वक्त हो चुका था। माई चली गई। उसका एक एक शब्द मेरे मस्तिष्क में घूमने लगा। मैंने सोचा, माई ठीक तो कहती है। मरने से क्या उद्देश्य पूरा होगा? मेरे मरने के दूसरे ही दिन सौत ब्याह लायेंगे। जो जीते जी यह करते हैं, मरने के बाद क्या नहीं कर सकते? नहीं मैं ऐसा न होने दूंगी! उन्हें बता दूंगी की मैं मामूली, कमज़ोर और

कायर औरतों में से नहीं हूँ जो मर्दों की जूती बन कर रहती हैं। जो उनके हर अच्छे और बुरे काम के आगे सिर झुका देती हैं। मैं उठी, जल्दी जल्दी मैंने काम खत्म किया। फिर नहा-धोकर बाल बनाये, साड़ी बदली, शीशे में अपनी सूरत देखी तो ओंठों से फिर लम्बी सांस निकल गई।

उसी वक्त बलवन्त जी पढ़ाने को आ गये।

मैंने उन्हें कुर्सी दी और पढ़ने के लिए बैठ गई। उन्होंने मुझे एक बार कनखियों से देखा। शायद उन्हें कुछ आश्चर्य सा हुआ। शायद वे उस कायापलट पर कुछ चकित हुए। हमारी आंखें चार हुईं। मेरा दिल धक धक करने लगा। लेकिन मेरे दिल में ईर्ष्या और बदले की आग सी जल रही थी। मैं मुस्करा दी। उन्होंने निगाहें नीची कर लीं और पढ़ाने लगे। लेकिन मैं पढ़ न सकी। जो वे पूछते मुझे भूल भूल जाता। वे मीठी झिड़कियाँ देते, मैं मुस्करा देती। बार बार उनकी निगाहें मेरी ओर उठतीं। बार बार हमारी निगाहें चार होतीं। पढ़ते पढ़ते मेरा हाथ उनके हाथ से छू गया। मेरे बदन में सनसनी दौड़ गई। उनका जिस्म कांपा, उन्हें प्यास सी लगी। हकलाते हुए, सूखे गले से उन्होंने पानी मांगा। मैं भागकर रसोई-घर से पानी का गिलास ले आई। एक-दो घूंट पीकर वे मुझे पढ़ाने लगे। उस वक्त मुझे भी प्यास लगी। मैंने कहा, "मुझे भी प्यास लगी है।"

"उठकर पी आओ।"

"अब कौन उठकर जाये", यह कहते हुए मैंने एक बार उनकी ओर देखा और उनका जूठा गिलास उठाकर मुंह से लगा लिया।

वे आश्चर्य से मेरी ओर देखते रह गये।

मैं कुंडी लगाकर चुपचाप खड़ी रह गई। बलवन्त जी तत्काल चले गये। और मैं उनकी दृष्टि में ही नहीं, अपनी नज़र में भी गिर गई। मुझे अपने ऊपर क्रोध हो आया। मैं अन्दर सोने के कमरे में भाग गई और अनायास रोने लगी। यह मैंने क्या कर दिया। इतने दिनों से पाले-पोसे

धर्म के हरे-भरे पौधे को एक क्षण की कमज़ोरी में काट फेंका। मान लिया, उन्होंने मेरा अपमान किया था ; मान लिया, उन्होंने मेरे साथ ला-परवाही बरती ; माना कि उन्होंने मुझे अपनी नज़रों से गिरा दिया, लेकिन क्या मुझे भी ऐसा करना चाहिए था। पछतावे और शर्म की आग ने मेरे रोयें रोयें को जला दिया। सारा दिन मैंने कुछ न खाया। सारा दिन कमरे से बाहर न निकली। मैं चाहती थी कि वे आजायें तो बिना झिझक के उनके सामने अपना पाप रखदूं। उसका कारण भी बता दूं। एक बार फिर मिन्नत करके उन्हें समझा दूँ। उन्हें बता दूं कि इस तरह बात न बनेगी। कुछ त्याग उन्हें करना होगा, कुछ मुझे। इस तरह ही गृहस्थी की गाड़ी चल सकती है। मैं चाहती थी, उनके सामने रोऊँ, उनके पांव पड़ूं। उनसे कहूँ कि बाहर बाहर है, घर घर। जब तक नसों में जोश है, जेब में पैसे हैं, शरीर सुन्दर है, बाहर खूबसूरत लगेगा। लेकिन जब नसें ढलक जायेंगी, सुन्दरता की जगह कुरूपता ले लेगी और जेब में पैसे खत्म हो जायेंगे, उस वक्त घर ही काम आयेगा।

शाम तक मैं इन्तज़ार करती रही, लेकिन वे न आये। जी में एक बार आई, उधर जाकर देखूं कि क्या हो रहा है। लेकिन फिर वहीं लेटी रही, उठने को जी ही न चाहा। इसी तरह दो घण्टे और बीत गये। शाम के सात बजने को आये, मैं उठकर खिड़की में आ बैठी कि कहीं रामू नज़र आये तो उन्हें बुला भेजूं। बड़ी देर तक बैठी रही, लेकिन वह नज़र न आया। आखिर थक कर उठने ही लगी थी कि वह बाज़ार से आता दिखाई दिया। मैंने इसे आवाज़ दी, वह ऊपर आ गया। मैंने कुंडी खोले बगैर उससे पूछा, "मास्टर जी उधर ही हैं ?"

"हाँ।"

"कहो, खाना तैयार है आकर खा लें।"

"वे खाना कबके खा खा चुके हैं।"

इतना कहकर वह चला गया। मेरी आंखों में फिर आँसू छलक

आये। और मैं बिस्तर पर लेट, फूट फूटकर रो उठी। रात मैंने आंखों में ही काट दी। सुबह हुई तो सिर चकरा रहा था। भूख के मारे जान निकली जा रही थी। यों भूखे रहने का मुझे अनुभव न था। व्रत आदि मैंने कभी रखे न थे। एक ही दिन में सारी शक्ति जाती रही। उठी तो आंखो के आगे अंधेरा छा गया। फिर वहीं चारपाई पर बैठ गई। 'अपनी बेबसी पर एक बार फिर आंखों में आँसू भर आये। लेकिन दिल कड़ा करके फिर चौका बर्तन में लग गई। बासी खाना बाहर फेंका, सफाई की, खाना बनाया, नहाई-धोई और फिर लेट गई। कुछ देर बाद बलवन्त जी आ गये। मैंने उनसे कह दिया कि मेरी तबियत ठीक नहीं है।

"क्यूं क्या बात है।"

उनकी आवाज़ में कुछ दर्द था। लेकिन मैंने जवाब न दिया। वे चले गये। मैं फिर मास्टर जी का इन्तज़ार करने लगी। रामू सुबह सुबह खिड़की के सामने से गुज़रा। मैंने उससे उन्हें भेजने को कहा। लेकिन वे न आये, कहला भेजा, "मुझे फुरसत नहीं है।"

मेरे दिल को बड़ी ठेस लगी। जी में आई कि एक दफा जाकर 'बीबी जी' के भी पांव पड़ आऊँ। लेकिन नतीजा कुछ न निकलेगा, इस बात का मुझे विश्वास था। ऊपर से अपमान और सहना पड़ेगा। एक बार जाने के लिए उठी, लेकिन आत्मसम्मान ने मेरे पांव पकड़ लिये। मेरा सोया अभिमान फिर जाग उठा। मैं इतनी गई गुज़री हो गई। मेरी स्थिति इतनी गिर गई कि इतनी बार बुलाया, न आये। मुझ से तो एक भिखारिन अच्छी। इतनी मिन्नत करने पर उसे खैरात तो मिल जाती। एक बार ख्याल आया—सब छोड़ छाड़-कर मैके चली जाऊँ। लेकिन यों बेबस और लाचार हो कर जाना और घर में सौत बैठा जाना मुझे स्वीकार न हुआ। मैं उठी, खाना वैसे ही ढांक कर रख दिया। अन्दर जाकर लेट गई। बलवन्त जी फिर आये, लेकिन उन्हें भी साथ लाये।

मैंने दर्वाज़ा खोल दिया। मेरी कमज़ोर और मुर्दा सूरत देखकर

बलवन्त जी स्तब्ध रह गये। उन्होंने भी एक बार हैरानी से देखा। मेरी आंखों में आंसू झिलमिला आये। लेकिन उसकी परवा न करते हुए उन्होंने कहा, "पढ़ती क्यों नहीं?"

"क्या करूँगी पढ़कर", मैंने रोते हुए कहा।

मेरा ख़्याल था उनका दिल पसीज उठेगा, वे मुझे अन्दर ले जाकर समझायेंगे, मुझे ख़ूब ख़ूब प्यार करेंगे, जैसा हमेशा होता है। लेकिन नहीं उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं की। मेरे पीले चेहरे का, मेरे बहते आंसूओं का कुछ ख़्याल न किया। सिर्फ इतना कहा—

"तुम्हारी मर्ज़ी है चाहे पढ़ो या न पढ़ो। बाद को न कहना कि तुम्हें किसी ने न पढ़ाया। शिक्षित होकर आदमी सौ काम कर सकता है और अनपढ़ को दर दर का मोहताज होना पड़ता है। कौन जानता है तुम्हें कब अपने हाथों रोज़ी कमानी पड़े।" इतना कहकर वे तेज़ी से चले गये। मैं अपनी जगह चकित सी खड़ी रह गई। मेरा सारा शरीर कांप गया। अच्छा तो मामला यहाँ तक आ पहुँचा है। वे मुझे छोड़ देने को तैयार हैं। फिर—फिर मैके जाना होगा, बेबसी में वहां कितने दिन बसर होंगे। अच्छा तो फिर योंही सही, पढ़ूंगी ही।

बलवन्त जी चुपचाप खड़े थे। आहिस्ता से बोले क्या बात है? "आप तो एक दिन में पहचानी तक नहीं जातीं। मुझसे अगर कुछ कसूर हुआ हो तो माफ कर दीजीए।"

मैंने एकाएक उनकी ओर देखा, उनका चेहरा उतरा हुआ था। मैंने कहा, "नहीं कसूर कैसा! कसूर तो मुझसे हुआ। माफी तो मुझे मांगनी चाहिए। उस दिन नाहक आपको नाराज़ कर दिया।"

वे मुस्कराये, "नाराज़! मैं तो आपका दास हूँ। नाराज़गी कैसी। मुझे तो डर था, कहीं आप नाराज़ न हो गई हों।"

मैं मुस्करा दी और भूल गई कि मैं दो दिन से भूखी हूँ। भूल गई कि मैं बहुत कमज़ोर हूँ। भूल गई कि मेरा सिर चकरा रहा है। उस वक्त जिस्म में नई ताक़त, नयी ज़िन्दगी आ गई और मैं बिना खाये-पिये पढ़ने को बैठ गई।

मैं इस एक महीने में पाप की कितनी गहराइया उतर गई, कह नहीं सकती। जब चौंकी तो पलटना मुश्किल था। इसीलिए उसी रास्ते पर चलने लगी। उसी प्रकार जैसे भूला भटका मुसाफिर यह जानते हुए भी कि रास्ता गलत है, उसी पर चला जाता है, क्योंकि वह इतना बढ़ चुका होता है कि फिर पीछे मुड़ना उतना ही दुष्कर लगता है। इस बीच में मेरे और बलवन्त जी के सम्बन्ध गुरु-शिष्या के न रहे थे, बल्कि हम उस रिश्ते में बँध गये थे जिसमें शिष्या गुरु पर श्रद्धा ही नहीं रखती उसकी पूजा भी करने लगती है और गुरु शिष्या पर स्नेह-दृष्टि ही नहीं रखता उसे प्यार भी करता है। एक दिन जिस बात का डर था वह होकर रही। न जाने कैसे उन्हें शक हो गया और उन्होंने हमारी निगरानी शुरू कर दी। एक दिन जब हम चारपाई पर इकट्ठे बैठे थे, वे अचानक आ गये। उन्होंने इधर आना बहुत कम कर दिया था और अक्सर हम अन्दर से कुंडी लगा लिया करते थे। लेकिन उसे दिन न जाने कैस कुण्डी खुली रह गई। बलवंत जी उठकर कुर्सी पर चले गये और मैंने किताब उठाने की कोशिश की। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा। सिर्फ मेरी ओर देखा और वापस चले गये। उनकी आँखों में क्या था, कह नहीं सकती। मेरा दिल बुरी तरह धड़कने लगा। बलवंत जी का रंग भी पीला पड़ गया। उन्होंने मुझे दिलासा देने की चेष्टा की। लेकिन न जाने मेरे दिल को क्या हो रहा था। मैंने सिर्फ इतना ही कहा, "आप जाइए।"

इस बात के होते भी कि हम प्यार की गहराइयों तक उतर गये थे; हम दोनों एक हो गये थे; हमने एक दूसरे के लिए कुर्बान हो जाने की बड़ी बड़ी कसमें खाई थीं, उन्हें मेरी बात टालने की हिम्मत न हुई। वे चुपचाप चले गये।

मैं लेट गई। क्या सोचती रही, कह नहीं सकती। मैं उस मंजिल पर थी जहाँ पहुँचकर इन्सान कुछ नहीं कर सकता। एक बात साफ थी कि अब मैं इस हद तक बढ़ चुकी थी कि पीछे हटना मुश्किल था और हालत बदलने वाली न थी। वे मेरी मदद करते तो शायद कुछ हो जाता, लेकिन मेरी तरह वे भी पाप के रास्ते पर दौड़ रहे थे और इसीलिए मुझे अपने पाप का पछतावा न था। इस पथ पर मेरा प्रदर्शन उन्हीं ने किया था।

पहले गुनाह की अँधेरी गुफ़ा में कौन गिरेगा, इसे कोई न जानता था, लेकिन हम जानते थे कि हम एक ही रास्ते पर जा रहे हैं और यह बात हमें एक दूसरे के गुनाहों को जानते हुए भी चुप रहने के लिए विवश कर रही थी। मैं उन्हें कई बार टोक चुकी थी, इसलिए ज्यादा टोकना बेकार समझती थी। और वे इसलिए चुप थे कि उन्हें अपने गुनाहों के भंडा-फोड़ का भय था। एक गर्ल्स स्कूल का संस्थापक इतना बदचलन है, इस बात का ज़रा सा शक होते ही स्कूल फेल हो सकता था। 'बीबीजी' की नौकरी खत्म हो सकती थी। शायद इसी बात को सोचकर वे चुप थे। एक बार मेरे जी में आई कि यह रास्ता छोड़ दूँ। कि जब वे आयें तो पूछूँ कि इस तरह कहाँ पहुँचेंगे। लेकिन वे न आये। हाँ उन्होंने सब सामान दूसरी ओर मँगवा लिया। मुझे इस बात का ज़रा भी अफसोस न हुआ। यह सब तो होना ही था। कुछ दिन पहले न हुआ, अब हो गया। हाँ, अब मुझे भविष्य की चिंता होने लगी।

दूसरी सुबह वे कुछ जरूरी काग़ज लेने आये। उस दिन बलवंत जी न आये थे। मैं और सब पूछना भूल गई। पूछा भी तो यह कि पंडित जी अब न आयेंगे क्या ?"

उन्होंने कहा "नहीं।" और सामान उठवा कर जाने को तैयार हुए। मैंने पूछा "आप उधर ही रहिएगा ?"

"हाँ"

"और मैं ?"

"जहाँ तुम्हारी मर्ज़ी हो, रहो।"

"मैके छोड़ आओ।"

"भाई को भेज दूंगा"

"और अगर यहाँ रहूँ"

"शौक से"

"खाऊँगी कहाँ से"

"पहुँच जाया करेगा।"

और मुंह दूसरी ओर फेर कर वे चले गये। मैं एक क्षण वैसी ही खड़ी रही। फिर मैंने अन्दर जाकर सामान ठीक करना शुरू किया। इस तरह दूसरे पर बोझ बनकर हरगिज़ न रहूँगी। यदि वे मुझे छोड़ना चाहते हैं तो मैं खुद उन्हें छोड़ दूँगी।

रात के बारह बजे होंगे। उस दिन आकाश पर बादल घिरे हुए थे। खूब घटा टोप अँधेरा छाया हुआ था। रास्ते में बिजली के लैम्पों की टिम-टिमाती रोशनी ही बाज़ार में चलने वाले भूले-भटकों की पथप्रदर्शक थी। मैं खामोशी से अपने ज़ेवरात और रुपयों की गठरी सम्हाले हुए सीढ़ियों से उतरी। बलवंत जी पहले ही से प्रतीक्षा कर रहे थे। थोड़ी दूर चलने पर हमें तांगा मिला। उन्होंने कहा, "मंडी के ऊपर से होते हुए स्टेशन के सामने के 'पवित्र होटल' चलो।"

"इधर से क्यों न चला जाय। बिल्कुल नज़दीक रहेगा", तांगा वाले ने तांगा मोड़ते हुए कहा।

"जैसे कहा गया है करो" बलवंत जी ने कहा—"जल्दी करो। पानी गिरने वाला है।"

उस दिन जब मैं सब सामान बाँध कर मैके जाने को तैयार थी, भाई बलवन्त जी का एक पत्र लाई थी। उन्होंने शायद रोते रोते पत्र लिखा था।

वे मेरे प्यार में पागल हुए जाते थे। मैं उनसे अपने भविष्य के इरादों की बात न कहना चाहती थी। मैंने निश्चय किया था कि मैके जाकर किसी न किसी तरह कुछ पढ़ लूँगी। जिससे पन्द्रह-बीस रुपये की नौकरी मिल सके। नौकरी करके किसी तरह ज़िन्दगी के बाकी दिन गुज़ार दूँगी। किसी पर बोझ बनकर न रहूँगी। लेकिन बलवन्त जी का पत्र पाते ही मेरे सारे इरादे हवा हो गये। मैंने उन्हें जवाब दिया और रात में मिलने का निश्चय किया। पत्र लिखकर मैंने माई के हाथ में रखा और आठ आने उसके हवाले किये।

ठीक समय पर वे आये। हम दोनों कितनी ही देर तक बातें करते रहे। फैसला यही हुआ कि हम यहाँ से कहीं चले जायँ। मैं यहाँ एक सेकंड के लिए भी रुकने को तैयार न थी। पंडित जी ने स्कीम रखी कि हम 'पवित्र होटल' में एक कमरा ले लें, बहाना यह करेंगे कि रात की गाड़ी से हम पेशावर से आये हैं और रात भर के लिए होटल में रहना चाहते हैं, दूसरे दिन प्रातः हरिद्वार चल दें।

बादल ज़ोर ज़ोर से गरजने लगा था और हवा बहुत तेज़ चल रही थी। हम दोनों इतनी देर चुप बैठे रहे, कोई बात न हुई। दोनों भविष्य के बारे में सोच रहे थे, स्टेशन आ गया। यहाँ से तांगा धीरे धीरे चलने लगा। बहाना पूरा करने के लिए पंडित जी ने एक ट्रंक और बिस्तर साथ रख लिया था। स्टेशन से शहर की ओर आने में पहले 'दिलकुशा होटल' आता है और बाद में 'पवित्र होटल'। ताँगा दिलकुशा होटल के पास रुक गया। क्योंकि सामने एक तांगा था, दूसरी ओर से मोटर गुज़र रही थी। हम यहीं से उतर कर चल पड़े। ठण्डी हवा के झोंकों से मेरा दुप्पट्टा उतरा जा रहा था। मैंने कपड़े को ज़रा मुँह पर सरका लिया। कुछ फासले पर एक मर्द और औरत आते दिखाई दिये। हवा का एक झोंका आया और मेरे सिर से दुपट्टा उतर गया। 'दिलकुशा होटल' से आने वाली बिजली की मध्यम रोशनी में मैंने देखा कि 'वे' और 'बीबी जी' आ

रहे हैं। उन्होंने भी हमें देख लिया। 'बीबी जी' का मुंह शर्म से लाल हो उठा। फिर उस पर स्याही पुत गई। मास्टर जी के चेहरे पर पहले क्रोध कौंधा, (मेरा हृदय धक धक कर उठा।) पर विजली की कौंध के बाद आकाश पर छाने वाले अँधेरे की तरह उनके मुख का आकाश काला पड़ गया। उन्होंने उपेक्षा से मुंह फेर लिया।

वे हमारे पास से होकर दिलकुशा होटल में घुस गये और हम उनके पास से होकर 'पवित्र होटल' में।

जवानी का रूमान

अर्थशास्त्र को बड़ी-सी किताब को मेज़ पर पटक कर हामिद अली आरामकुर्सी पर पीछे की ओर लेट गया।

बी० ए० का इमतिहान भी क्या मुसीबत होता है—उठना, बैठना, सोना सब हराम हो जाता है। न खाने की फ़िक्र, न सैर का ख़याल जब वक्त मिला, दो-चार कौर जल्दी-जल्दी निगल लिये। जब पढ़ते-पढ़ते थक गये, बरामदे में दो-चार पग घूम लिये। खेल सपना बन गये। कामन-रूम में गये मुद्दत हो गई। इमतिहान—शायद जीवन एक बड़ा इमतिहान है और ये सब छोटे इमतिहान उसमें कामयाब होने के लिए सीढ़ियाँ मात्र हैं...और उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

खिड़की से आनेवाला प्रकाश, धीरे-धीरे अन्धकार में परिणत हो रहा था। किताब पर अक्षर नाचने लगे थे, किन्तु पास ही बैठा मुहम्मद उमर अभी तक सिर झुकाये पढ़ने में निमग्न था। हामिद को पुस्तक फेंकते देख कर उसने भी सिर उठाया। हामिद ने कहा, "बी० ए० का इमतिहान पास कर लेना भी नजात हासिल कर लेने के बराबर है उमर!"

किताब बन्द करते हुए उमर हँसा। "जिस्म में जान रहते इस ज़िन्दगी की कश-मकश से नजात पाना मुश्किल है हामिद", उसने कहा, "इस मेहनत से घबराना तो कायरों का काम है, मैं तो उसी जिन्दगी को अच्छा समझता हूँ जो काम ही में, कशमकश ही में खत्म हो जाये!"

हामिद एक फीकी हँसी हँसा—"बी० ए० पास कर के क्या करने का इरादा है उमर?"

"एक इरादा हो तो बताऊँ", उमर बोला। बेगिनती इरादे हैं। मैं तो रौ में बह जाने वाला आदमी हूँ। एक ही जगह से चिपके रहना मेरे लिए मुश्किल है, मैं तो हमेशा तरक्की के लिए ही कोशिश करूँगा। तुम अपनी कहो?"

"मैं तो अपने बाप-दादे का पेशा सँभाल लूँगा।"

"क्या? ग्रेजुएट होकर!"

"क्यों, इसमें क्या हर्ज है? खेती-बाड़ी आखिर क्लर्की से तो बुरी नहीं। नूर के तड़के उठकर बैलों को ले, खेतों में जाना, चार-पाँच घण्टे डट कर काम करना; दोपहर को आम के घने पेड़ों में कोयल की कू कू सुनते हुए सो जाना; शाम को थक हार कर नदी के ठण्डे जल में नहाना; खाना खाना और टाँगें पसार कर सुख की गहरी नींद सो रहना—मैं तो इस जिन्दगी को सबसे अच्छा समझता हूँ।"

उमर ने इस कवि को एक नजर देखा और हँसते हुए बोला, "अगर खेती-बाड़ी ही करनी थी, तो फिर यहाँ कालेज में जूते तोड़ने की क्या जरूरत थी?"

'पढ़ना तो किसी सूरत में बुरा नहीं उमर और फिर मैंने तो सब्जेक्ट्स ही वो लिये हैं जो बाद में मेरी मदद कर सकें। गाँव में अबके जाऊँगा तो नये तरीकों से खेती-बाड़ी करने की कोशिश करूँगा। नये-नये बीज, नयी-नयी फसलें, अनाज की माँग और उनकी सप्लाई, इकट्ठे मिलकर उसे बेचना और बीसियों दूसरी बातें हैं, जिन्हें एक पढ़ा-लिखा आदमी अनपढ़ से ज्यादा समझता है।

उमर केवल हँसा।

"और फिर देहात की जो चीज़ सबसे ज्यादा मेरे दिल को खींचती है", हामिद ने कहा, "वह है वहाँ की शान्ति। इस शोर-गुल से दूर, गाँव के किसी कोने में, साफ और पाकीज़ा हवा में जिन्दगी बिताना ही मेरे जीवन का आदर्श है। देहात में क़ुदरत की देवी अपने असली रूप में

दर्शन देती है, शायरी की देवी वहाँ अपने पुजारियों को दोनों हाथों से शायरी की दौलत लुटाती है। यहाँ होस्टल के कमरों में तबीयत पर ज़ोर देकर शेर कहता हूँ, वहां नदी के किनारे, दूर पच्छिम में डूबते हुए सूरजकी सुनहरी किरणों को नदी के पानी से खेलते देख आप से आप खयालात का सागर उमड़ आयेगा। मैं ईमान से कहता हूँ उमर, इमतिहान खत्म होते ही गाँव को चला जाऊँगा। नदी के किनारे छोटा-सा बाग लगाऊँगा। उसमें खुद अपने हाथ से जूही, मोतिया, सुदर्शन, रात-रानी और दूसरे खुशबूदार फूलों के पौधे लगाउँगा। चाँदनी रात मेंबागीचे में सोया करूँगा। ठण्डी-ठण्डी मद भरी हवा चलेगी, दिल-दिमाग खुशबू से भर जायंगे और फिर शेरों की दुनिया आबाद हो जायगी। दिन को किसानों के साथ हल चलाते हुए उनकी आवाज़ में आवाज मिलाकर देहाती गीत गाऊँगा।" और वहीं बैठे-बैठे हामिद ने तान लगाई—

हाथ लाल खिडौना ई
रब न भुलाईं वालो जिन पार लंघौना ई*

उमरने जोरका ठहाका लगाया—"वाह रे मेरेशायर"—उसनेउठते कहा—"लोग देहात से शहरों को जा रहे हैं, तुम शहर से गाँवकी भागे जा रहे हो; लोग जमीनों को छोड़ मशीनों की दुनिया आबाद कर रहे हैं, तुम मशीनो को छोड़ ज़मीनों का संसार बसाने की फिक्र में हो। मैं तो सच कहता हूँ, अगर कहीं काम न लगा तो शहर ही में एक छोटा-मोटा कारखाना खोल लूंगा। गाँव में वापस तो मुझसे जाया न जायगा।"

लेकिन एक दिन उमर को गाँव वापस जाना पड़ा और वह भी सदा के लिए। कुली के आगे-आगे सिर झुकाये वह प्लेटफार्म पर जा रहा था कि किसी ने उसे अजाव दी। चौंक कर उसने सिर उठाया, उसके चेहरे

---

*हाथ में लाल खिलौना है—ऐ प्रिये, तू खुदा को न भुलाना क्योंकि वही पार लगानेवाला है।

पर उल्लास की एक लहर दौड़ गई। नयी तरज़ का सूट पहने सामने हामिद खड़ा था—वही हामिद, जो देहात की दुनिया आबाद कर रहा था।

"अरे हामिद किधर से" ? वह सिर्फ इतना ही कह सका। और दोनों मित्र एक दूसरे के आलिङ्गन में बँध गये।

"गाँव से आ रहा हूँ", हामिद ने कहा, "कहो बहुत मुद्दत के बाद मिले, यह क्या भेस बना रखा है ? कहीं 'जात्रा' पर चले हो, क्यों ?" और वह हँसा।

"जात्रा ?" उमर ने रूखी हँसी के साथ कहा, "अब तो गाँव की जात्रा कर रहा हूँ।

"तो क्या इसीलिए सूट-पैंट को तलाक दे दिया है, मैं तो समझा था गाँधी के पैरो बन गये।"

"बना तो नहीं था, पर बनना पड़ा है। सोचता हूँ, गाँव में तो सूट-पैंट सजाकर रहा न जायगा, फिर क्यों न अभी से उस जिंदगी के लिए अपने आपको तैयार कर लूं।

"अरे ! तो क्या लाहौर छोड़ रहे हो ?"

"अभी तो छोड़ ही रहा हूँ और जल्द लौटने की उम्मीद दिखाई नहीं देती।"

"क्यों, खैर तो है ?"

"खैर कहाँ ?", "उमर ने लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा, "उधर वालिद साहब इस दुनिया से कूच कर गये; इधर हम सरकार की काट में आ गये। वालिद होते तो और मुलाज़मत मिल जाती, लेकिन अब..." और दीर्घ-निःश्वास छोड़कर उसने कहा, "और फिर वहाँ जमीन-जायदाद को कौन सम्हाले। मैं तो यही सोच रहा हूँ कि यह सब मुझसे कैसे हो सकेगा ? खेती-बाड़ी तो मैं करने से रहा और मुज़ारों के सिर पर न रहो

तो काम नहीं होता, अजीब मुश्किल में हूँ। कहां सिनेमा, तमाशे, सैर और कहां......मेरी तो रूह फ़ना हुई जा रही है, लेकिन तुमने यह भेस कब से बदला ?"

हामिद हँसा, बोला, "जब से तुमने बदला। तुम अपना चोला बदले गाँव को जा रहे हो, हम अपना चोला बदले शहर को आ रहे हैं।"

"लेकिन तुम्हें तो सूट और शहर से नफ़रत थी।"

"तुम भी तो खद्दर और देहात पर नाक-भौं चढ़ाते थे। और दोनों ने ठहाका लगाया।

फिर उमर ने पूछा, "तुम सुनाओ, तुमने तजरुबे किये, नये बीज, नयी मशीनें......"

हामिद ने एक ठहाका लगाया। बोला, "वालिद साहब ने हाथ तक नहीं लगाने किया। कहने लगे, पागल हो गये हो, इतना पढ़-लिखकर, और फिर अब तो जमींदारों की हुकूमत है...और अब सरकार के दफ़्तर में हम मुलाज़िम हैं। ढाई सौ तनखाह और बेगम साहिबा समेत आ रहे हैं।"

"तो क्या तुमने शादी भी कर ली।"

"महीनों हो गये और अब तो माशा अल्लाह एक बच्चे के बाप..." और ठहाका लगाकर हामिद हँसा,..."बेगम साहिबा खुद एफ० ए० तक पढ़ी हैं, अब अगले साल बी० ए० में दाखिल होंगी। अगले साल न हो सकीं तो उससे अगले साल तो ज़रूर होंगी और हामिद फिर हँसा। फिर उसने पूछा, "और तुम ?"

उमर ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ा, "यहां तो गँवार देहातिन से पाला पड़ेगा। याद भी नहीं, कब शादी हुई थी, शायद उस समय मैं आठवीं जमात में पढ़ता था।"

गाड़ी शूं-शूं करती हुई स्टेशन में दाखिल हुई और हाथ मिलाकर उमर चुपचाप पुलकी ओर बढ़ा।

टिकेट बाबू को टिकेट देकर उस छोटेसे स्टेशन के सुनसान मुसाफिर-खाने में उमर कुछ क्षण बिस्तर और सूटकेस के पास खड़ा रहा।—आज अगर वालिद होते तो क्या वे किसी को भी न भेजते—वह सोच रहा था—क्या ये लम्बे, सुनसान, तपते, तीन कोस पार करने के लिए उसे इस वीराने के स्टेशन पर खड़े होकर सोचना पड़ता। घोड़ा ऊँट या बहली कुछ भी उसके लिए न आती। दूर सामने उसने निगाह दौड़ाई—सूरज बहुत ऊपर चढ़ आया था, धूप तेज थी और कटे हुए खेतों से जैसे लहरिए से उठ रहे थे।

एक बार विवशता की दृष्टि से उसने स्टेशन मास्टर के कमरे की ओर देखा—वे बड़ी निमग्नता से तार खटखटाने में व्यस्त थे। तब सहसा उसके ओठ भिंच गये, भवें तन गईं, मन ही मन में उसने कुछ निर्णय किया, बिस्तर को उठाकर कंधे पर रखा, सूट केस को हाथों में लिया और चुप-चाप चल पड़ा।

स्टेशन से कोई आध कोस के अन्तर पर सरकारी नहर थी जो सीधी उसके गाँव के पास से होकर जाती थी। नहर के किनारे कहीं-कहीं ओकांह और बबूल के पेड़ थे, जिनके कारण कुछ थोड़ी बहुत छाया नहरके किनारे-किनारे होती चली गई थी और ऊँचे-ऊँचे सरकण्डों की भरमार होने के कारण वहाँ कुछ ठण्डक थी। नहर पर पहुँचकर एक घने पेड़ की छाया में उमर ने सूटकेस और बिस्तर पटक दिया और रूमाल निकाल-कर अपने चेहरे और गर्दन को पोंछा। बाँह उसेकी अकड़ गई थी और कंधा दर्द करने लगा था, पर वह बहुत देर तक सुस्ताया नहीं। अभी अढ़ाई कोस बाकी हैं, यदि इस तरह आराम करने लगा तो पहुँच चुका! उसने

बिस्तर और सूटकेस को उठा लिया—हाँ, इस बार हाथ और कन्धा दोनों बदल लिये।

चुपचाप वह नहर के किनारे चला जा रहा था। धूप और भी तेज हो रही थी। गरम लू चलने लगी थी। इर्द-गिर्द दूर-दूर तक खेत बीरान पड़े थे और कहीं-कहीं खलिहानों में इस गर्मी में भी तहबन्द कसे, अपने पसीने से निचुड़ते हुए, धूप की जलन से स्याह पड़ जानेवाले शरीरों को लिये किसान भूसे से गेहूँ अलग कर रहे थे। इस सुनसान और वीरान वातावरण में उसे रहना होगा—उमर का जी भर आया और साथ ही उसने फिर सूटकेस को जमीन पर टेक कर कंधा बदल लिया।

फिर उसने अपने मन को सान्त्वना दी। नहीं, वह खेती बाड़ी की रीति ही बदल देगा, पश्चिमी तरज की नयी मशीनें लायेगा, महीनों का काम दिनों में कर देगा। नहर के किनारे बाग लगायेगा, मुर्गीखाना खोलेगा। इस विचार के साथ ही उसके शरीर में स्फूर्ति-सी आ गई और वह तेज-तेज चलने लगा, पर दूसरे क्षण फिर निराशा ने उसका दामन थाम लिया। मशीनों के लिए विशाल भूमि चाहिए। उसके पास इतनी भूमि कहाँ है? उसकी ज़मीन को तो विलायती हल एक ही दिन में जोत देगा। और दायीं ओर एक खेत में नङ्गी पीठ, कमर में तहबन्द, और सिर पर पगड़ी बाँधे उसने एक किसान को हल जोतते देखा। उमर के शरीर में कँप-कँपी-सी दौड़ गई। नहीं, उससे यह सब नहीं होगा। वह एक बार फिर लाहौर में जाकर नौकरी ढूंढ़ने का प्रयास करेगा। उसके सामने हामिद की तस्वीर घूम गई। कितना भाग्य का बली है। लाहौर से घर खेती-बाड़ी करने गया था, पर वहाँ से नौकर होकर लाहौर पहुँचा और खुद वह......उसने एक लम्बी साँस ली और दिल ही दिल में अपने भाग्य को कोस लिया।

मार्ग में कई बार रुक-कर आखिर वह गाँव के समीप पहुँच गया। पर इस तरह बिस्तर और ट्रङ्क उठाये, पसीने से निचुड़ते हुए जाना उसे

स्वीकार न था। बिस्तर और ट्रङ्क दोनों को रखकर वह एक पेड़ की छाया में बैठ गया। कुछ सुस्ताने के बाद उसने नदी में हाथ-पैर धोये, आँखो पर ठण्डे पानी के छींटे मारे और फिर बिस्तर से पीठ लगाये वह लेट गया। कुछ ही देर बाद उसकी आँख लग गई।

जब वह जागा तो शाम हो गई थी। सूरज पच्छिम में अस्त हो रहा था और उसकी किरणें नहर के पानी से जैसे गले-मिलकर विदा ले रही थीं; किसान अपने खेतों से वापस आ रहे थे, और दूर गाँव से पशुओं के गलेमें बंधी हुई घण्टियों की आवाज़ बड़ी प्यारी लग रही थी।

उमर उठा, एक बार कपड़े झाड़कर उसने फिर हाथ मुंह धोया, बिस्तर और सूटकेस उठाये और चल पड़ा। अपने खेतों के पास वह पहुँच गया। तब उसने देखा, कि एक लड़का और लड़की खाले से पानी भर रहे हैं। लड़का बहुत छोटा था, पर लड़की जवान थी। उसे एक नज़र देखकर उमर कुछ क्षण के लिए वहींका वहीं ठिठक कर रह गया। 'कितनी खूबसूरती है—'कितनी सेहत भरी खूबसूरती !' दिल ही दिल में उसने कहा ?

लड़की ने चौंकी हुई मृगी की भाँति उसकी ओर देखा और फिर लड़के की सहायता से एक घड़ा सिर पर उठाकर और एक कमर पर रख कर जल्दी-जल्दी वहाँ से चल दी। वह लड़का भी उसके साथ-साथ चलने लगा।

कुछ क्षण तक उमर, चुपचाप, उस मार्ग को, जैसे उस शून्य को अनिमेष दृगों से देखता रहा, जिधर से वह होकर गई थी। फिर वह चलने लगा। उसका हुस्न कितना कुदरती है, उसके अङ्ग कितने सुडौल हैं, उसकी चाल में कैसी क़यामत है और उसकी आँखों के सामने अनारकली और माल पर सैर करनेवाली पतली, दुबली, पोली-पीली, पाउडर और सुर्खी की मोहताज कई सूरतें घूम गईं।

गाँव में कहीं-कहीं चिराग़ टिमटिमा उठे थे, जब उसने घर का दरवाज़ा खटखटाया।

माँ जैसे प्रतीक्षा ही कर रही थी, कहने लगी, "आओ बेटा, इतनी देर कहाँ कर दी, रास्ते में कहीं ठहर गये थे क्या ?"

उमर ने कहा, "हाँ योंही गाँव के बाहर जरा ठहर गया था और फिर बिस्तर को धरती पर रखते हुए बोला, "लेकिन अम्मा, तुम्हें किस तरह मालूम हो गया कि मैं देर से आया हूँ ?"

"अरे ! तुमने पहचाना नहीं, तुम्हारी बहू खाले पर पानी लेने गई हुई थी।"

उमर के दिल में गुद-गुदी-सी उठी। उदासी उसकी काफूर हो गई। नगर में रहकर वह भूल गया था कि देहात में पर्दा नहीं, कि देहात मे स्त्रियाँ पुरुषों से कन्धे से कन्धा भिड़ा काम करने से कन्नी नहीं कतरातीं। वह सीधा अन्दर कमरे में गया। उसकी पत्नी उसका स्वागत करने को तैयार खड़ी थी।

"कितना बदल गई हो सलमा ?" उमर ने प्रवेश करते हुए कहा, "मैं तो खुदा कसम तुम्हें पहचान नहीं सका।"

सलमा, जिसका असली नाम सलीमा था, सिर झुकाये खामोश खड़ी रही।

उमर ने सिर से पाँव तक अपनी पत्नी पर एक निगाह दौड़ाई।

सलमा...वह मन में हँसा...सलमा...ठीक...सलमा ही वह कहा करेगा, इतनी सुन्दरता भी क्या सलीमा कहाने के योग्य है। तनिक और आगे बढ़कर उसने कहा "देखो सलमा, अगर मैं पहली नजर में तुम्हें पहचान न सका, तो इसमें मेरा कोई कसूर नहीं। क्या मालूम कि मेरी सलीमा अब यों सलमा बन गई है। तुमने तो सच चोला ही बदल लिया है।"

धरती में निगाहें गाड़े सलीमा ने कहा, "हाँ, क्यों पहचानते, शहर में हम फूहड़ों की याद क्यों आने लगी।"

चोट गहरी थी, उस कमरे के धीमे प्रकाश में उमर का चेहरा कान तक सुर्ख हो गया। सलीमा की निगाहें अभी तक धरती ही में गड़ी थीं। ठोडी पकड़ उसके मुख को ऊपर उठाते हुए उसने कहा, "सलमा, शहर की लड़कियाँ तुम्हारे पैरों की खाक का भी मुकाबिला नहीं कर सकतीं!"

"तो इमतिहान पास करते ही आये क्यों नहीं?"

"नौकर हो गया था।"

"यों भी तो न हो सका कि एक बार घर की सुध लेते।" और सलीमा की आँखें भर आईं।

उमर ने कहा, "अब तो हमेशा के लिए तुम्हारे कदमों में आ गया हूँ।"

"कौन जाने कब उठकर चल दो?"

"अब न जाने देना!"

"मुझमें वह ताब कहाँ?" और फिर "मैं कौन हूँ रोकने वाली!"

दिये के मद्धिम प्रकाश में उमर का मुँह जरा-सा निकल आया। उदास होकर उसने कहा, "अगर मेरा आना तुम्हें बुरा लगा है, तो मैं अभी यहाँ से चला जाता हूँ।"

सलीमा ने उमर की कमीज का दामन पकड़ लिया और उसकी आँखों से झर-झर आँसू टपक पड़े, मुद्दतों का गुबार आँखों के रास्ते बह निकला।

उमर ने कहा, "सलमा, अब मैं कहीं न जाऊँगा। शहर तो ज़हर है; आहिस्ता, आहिस्ता, इन्सान की नस-नस में मिलता जाता है और उसे मालूम भी नहीं होता। यहाँ तक कि वह उसका आदी हो जाता है। उसकी सेहत, उसकी मेहनत, उसकी नेकदिली, उसकी सब कुदरती खूबियाँ मर जाती हैं। पर तुम्हारे यहाँ तो देहात का अमृत है, तुम मुझे उससे दोबारा क्यों न जिला लो, फिर देख लेना, मेरे इन बाजुओं में कितनी बेपनाह ताकत आ जाती

है। तुम ज़रा मेरी मदद करना, फिर देखना, इस वीराने में मैं एक नयी दुनिया आबाद कर देता हूँ कि नहीं।'

मां ने आवाज़ दी, "उम्मू, इधर आकर कुछ नाश्ता तो कर लो, बातें फिर कर लेना।"

और सुर्ख-सुर्ख चेहरा लिए उमर बाहर निकल गया।

पांच साल के अर्से में सलमा और उमर ने अपनी भूमि की काया पलट दी। लायलपुर के कृषि-सम्बन्धी सरकारी फ़ार्म में कुछ देर रहकर उमर खेती-बाड़ी के सम्बन्ध में पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर आया। फसल में किस प्रकार कीड़े लगते हैं; बीमार बीजों को किस प्रकार स्वस्थ बनाकर उनसे अच्छी फसल हासिल की जा सकती है, हिन्दुस्तान में कितने प्रकार की कपास पैदा होती है; अमरीकन कपास का तार देशी कपास के तार से कितना लम्बा रहता है और उसके लिए कौन-सी जमीन अच्छी है—ये, और इनके अतिरिक्त बीसियों बातें! नहर के किनारे अपनी जमीन में उसने बाग लगाया और छोटा-सा झोपड़ी नुमा मकान बनवा लिया।

साँझ का समय था। दूर पच्छिम में सूरज डूब रहा था और हल्के-हल्के नीले से बादल वहाँ आकाश पर छा रहे थे। उधर पूरब से चांदी की बड़ी गोल टुकड़ी निकल रही थी और किरणें भी उसकी जैसे सुनहरी थीं जिनसे धरती भूरी-भूरी-सी दिखाई देती थी। और उमर जैसे मन्त्र-मुग्ध सा, सलमा के साथ नहर की पटड़ी पर घूम रहा था। तभी सामने से उसे कुछ घुड़सवार आते दिखाई दिये।

उमर ने कहा, "सलमा, इस बार मालमण्डी लगी तो सुन्दर घोड़ियाँ ले आऊँगा, हम तुम......"

"अपने और सलीम के लिए ले लेना, मैं अब क्या घुड़सवार बनूँगी?" लजाते हुए सलीमा ने कहा।

"क्यों बस, एक ही बच्चे की मां होकर ?" और उमर ने ठहाका लगाया। तभी नन्हा-सा सलीम आकर अब्बा की टाँगों से लिपट गया। "हमें घोली ले दो अब्बा, उसने अपनी तुतली भाषा में कहा।"

"जलूल ले दूंगा"— उसकी नकल उतारते हुए उमर ने कहा और और फिर ज़ोर से हँसा और बच्चे को गोद में उठा लिया। तभी खाले के दूसरे किनारे से किसी ने उमर को आवाज दी।

दोनों ने चौंककर सिर उठाया—खाले के दूसरे किनारे हामिद घोड़ा रोके खड़ा था। उसके साथी आगे निकल गये थे।

"अरे हामिद तुम किधर ?" उमर ने आश्चर्य से पूछा।

सलीमा दूसरी ओर मुंह फेर कर और जरा घूंघट नीचे करके खड़ी हो गई।

"मेरी ससुराल में एक मौत हो गई थी, इसलिए बेगम साहिबा के साथ आया था," हामिद ने उत्तर दिया।

उमर ने फिर पूछा "तुम्हारी ससुराल इधर ही है क्या ?"

हामिद बोला, "नहीं, रहते तो वे लाहौर हैं, पर उनका गाँव इधर ही है।"

उमर ने आगे जाने वाले हामिद के साथियों की ओर एक नज़र देख कर कहा, "वे शायद तुम्हारी बेगम हैं!"

हामिद हँसा, बोला, "और तुम इधर कैसे ?"

उमर ने कहा, "समझ लो हामिद बन गया हूँ, तुम्हारे आदर्शों के मुताबिक खेती-बाड़ी करता हूँ, और जी भरकर सोता हूँ—वह देखो कितने बड़े-बड़े गन्ने खड़े हैं, पञ्जाब में शायद ही किसी दूसरी जगह इतने इतने लम्बे गन्ने हों। पारसाल कपास का तजरूबा किया था। बेहद कामयाब रहा। जमीन भी मैंने और खरीद ली है। अबकी सोच रहा हूँ, विलायती हल मंगा लूँ—और फिर उसने सलमा की ओर कनखियों से देखकर धीरे से कहा—"हामिद, मैं शायर भी हो गया हूं।"

हामिद ने एक लम्बी सांस ली। "मज़े में हो दोस्त", उसने कहा, "यहाँ मेहनत भी करते हैं, फिर भी नींद नहीं आती। नौकरी तो अफसरों से खटपट होने के कारण छूट गई, घर आने को बेगम साहिबा का जी नहीं चाहा, वहीं एक स्कूल में हैडमिस्ट्रेस हैं। इसलिए मैं भी एक अखबार में एडीटर हो गया हूँ। रात को जागता हूँ और दिन को सोता हूँ।" और हामिद ने एक विषादपूर्ण ठहाका लगाया।

उमर ने कहा, "तो आओ कुछ देर तो बैठो, उनको भी बुला लो, कुछ दूध-वूध पियो और फिर कुछ सुनो-सुनाओ! बैठो तो, मैं तुम्हें देहाती गीत सुनाऊँ।"

हामिद फिर विषाद से हँसा। घोड़े को ऐड़ लगाते हुए उसने कहा, "बस मेहरबानी, दुआ करो कि मैं भी तुम्हारी तरह आज़ादी की साँस ले सकूं।"

और देखते-देखते हामिद अपने साथियों से जा मिला और फिर वे सब पश्चिम की ओर से उमड़ते हुए अन्धकार में विलीन हो गये।

ह्वाइट के हिज्जे

चेतन जब सोचता तो पाता कि वह तो जीवन की कटुताही में उत्पन्न होकर पला और युवा हुआ है। यद्यपि अपने जन्म के सम्बन्ध में उसे कुछ अधिक ज्ञान न था, पर उसने माँ से सुना था कि उनके पुराने खंडहर-से मकान में बरसात की एक रात उसका जन्म हुआ था। निरन्तर कई दिन से पानी बरस रहा था, उनका मकान टप टप कई जगह से चू रहा था और कच्चे फ़र्श पर गढ़े बन गये थे। परदादी गंगादेई कई बार वर्षा के कोप को शान्त करने के लिए जले हुए कोयले आँगन में फेंक चुकी थीं, और वे (माँ और परदादी) मकान के गिर जाने के भय से रात रात भर जागती रहती थीं। धाय को देने के लिए घर में पैसे न थे। परदादी कहीं से (धर्म-शान्ति अथवा शुद्ध में) आये हुए बर्तन बेचकर कुछ पैसे जुटा लाई थीं और प्रसव के पश्चात् माँ को सोंठ और गुड़ मिले संठोले के अतिरिक्त पंजीरी अथवा अछवानी आदि शक्तिवर्द्धक कोई भी चीज़ न मिली थी। वह तो पूरे चालीस दिन आराम भी न कर पाई थी। परदादी अपनी अन्धी आँखों से चूल्हा झोंकती और दो तीन बार जलते जलते बची थी। इस लिए ग्यारहवें दिन का स्नान करके ही माँ घर के काम-काज में जुट गई थी।

चिन्ता, भय, पुष्टिकारक भोजन के अभाव और काम के आधिक्य के कारण माँ की छातियाँ शीघ्र ही सूख गई थीं और वह चेतन को छः महीने भी अपने स्तनों का दूध न पिला सकी थी। उसके लिए वह बकरी का दूध लेती, पर न जाने क्यों, चेतन को बकरी के दूध से घृणा थी। बकरी ही का नहीं, गाय का हो अथवा भैंस का, उसे सब प्रकार के दूध से नफ़रत थी। माँ की छातियों से दूध पीने के लिए वह लालायित रहा करता था। न पाने पर रोता, पिटता, पिटने पर और अधिक रोता, किन्तु

माँ दूध कहाँ से लाती ? उसकी छातियाँ तो सूखे बेजान मांस पिंड सी लटक रही थीं।

वह बहुत छोटा था जब उसके पिता हिसार के स्टेशन पर तार बाबू होकर गये थे। तब एक बार परदादी को जमुना स्नान कराने वे दिल्ली ले गये थे। माँ भी साथ थी और चेतन भी। वहाँ से मां ने नन्हीं-नन्हीं कटोरियां खरीदी थीं। उसका विचार था कि उनके लोभ से चेतन दूध पी लिया करेगा, परन्तु जब कटोरियाँ ऊपर के दूध का स्वाद न बदल सकीं, तो वह कटोरी देखते ही रोने लगता। माँ उसे कान से पकड़ लेती और बरबस लिटा कर दूध पिलाती। वह रोता, चीखता, हाथ-पैर पटकता, और इस प्रकार अपने शैशव ही में वह मरियल, चिड़चिड़ा और रोना बालक हो गया था।

चेतन को बचपन ही में अपने वातावरण की कटुता का आभास मिल गया था। एक दिन जब वह दूध न पी रहा था और माँ भरी कटोरी हाथ में लिये उसे मना रही थी कि उसके पिता आ गये। एक बार प्यार से, दूसरी बार तनिक कर्कश स्वर में और तीसरी बार गरज कर उन्होंने उससे दूध पीने को कहा। जब इस पर भी उसने कटोरी को मुँह न लगाया तो दड़ से दो थप्पड़ चेतन के पिता ने उसके गालों पर जड़ दिये और क्रोध के आवेश में इसे टांग से पकड़ कर उलटा लटका दिया। वे उसे उसी तरह पकड़ कर दो एक चक्कर देते, यदि माँ लगभग रोते हुए इतना न कहती, "लाइए अब पी लेगा।"

पिता ने उसे फिर सीधा खड़ा कर दिया। उनकी आँखों से चिन-गारियाँ निकल रही थीं। चेतन रोया न था। वह सहम गया था। जब माँ ने कटोरी उसके मुंह से लगाई तो उसने बरबस विष के घूंट की भाँति दूध पी लिया, पर दूसरे ही क्षण उसे कै हो गई। तब उसका मुंह धुलाते हुए उसकी पीठ पर अतीव दुःख से हल्का सा थपेड़ा जमाते हुए माँ ने आर्द्र कण्ठ से कहा था। "जा कम्बख्त ! तेरे भाग्य में दूध है ही नहीं।"

यह हल्का सा थपेड़ा जैसे अपने में एक भारी प्रचालन शक्ति रखता था। उसे आगे ही धकेले जाता था। पीठ पर माँ का थपेड़ा खाकर वह चला तो उसने पीछे मुड़कर न देखा था। वह धीरे धीरे आगे ही बढ़ता गया। उस क्रूर पिता के नैकट्य से दूर होता गया।

सारा दिन वह निरर्थक, निरुद्देश्य इधर उधर भटकता रहा। गालों से लेकर कनपटियों तक उसे सारी जगह सुलगती हुई महसूस होती थी। किन्तु वाह्य पीड़ा के अतिरिक्त उसके नन्हे, अपरिपक्व अन्तर के किसी अज्ञात स्तर में भी कुछ न कुछ सुलग रहा होगा, बिलकुल इसी तरह, जैसे अब अपने इस कमरे में बैठे उसके अन्तर में कहीं कुछ सुलग रहा था और वह उस स्थान को निर्दिष्ट न कर पा रहा था।

वह पिटते समय रोया न था, पर ज्यों ही आँगन से बाहर हुआ था उसकी आँखों से अनायास, अविरल आँसू बहने लगे थे। दिन भर ऐसा होता रहा था। जब वह अपना हाथ अपने सुलगते गालों पर ले जाता, उसकी आँखों में आँसू आ जाते।

पिटे हुए पिल्ले की भाँति वह सारा दिन इधर से उधर दुबका फिरता रहा था। दोपहर भर भुस की कोठरी में पड़ा रोता रहा था और साँझ पड़े जब माँ को उसकी याद आई थी तो वह पानी वाले के सूने क्वार्टर में पीढ़े पर भूखा सोया पड़ा था।

बाहर वर्षा हो रही थी और चेतन अपने कमरे में चुपचाप बिस्तर पर लेटा हुआ था। अपने बचपन की इस घटना के याद आने पर उसकी आँखें भर आईं। अनायास उसका हाथ अपने गाल पर चला गया। धीरे धीरे वह उसे सहलाता रहा। वहीं लेटे लेटे गाल को सहलाते सहलाते, उसके सामने उसके पिता की क्रूर आकृति घूम गई और फिर बचपन की वे समस्त घटनाएँ जब वह अपने क्रूर पिता के हाथों बुरी तरह पिटा था।

वह पाँच वर्ष का रहा होगा जब उसके पिता 'सैला खुर्द' स्टेशन पर नये नये नियुक्त हुए थे। तब उन्होंने उसे अँग्रेज़ी सिखाना आरम्भ किया

था। वे अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में एक स्कूल में अँग्रेज़ी के अध्यापक रहे थे और अध्यापकों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जीवन के आरम्भ में सौभाग्य या दुर्भाग्य से जो एक बार अध्यापक बनकर छात्रों पर शासन जमाता है, वह जीवन भर अध्यापक बना रहता है और उसके अधीन रहने वालों को इस या उस विषय पर निरन्तर उसके भाषण सुनने पड़ते हैं। चेतन के पिता का विचार था कि उन दिनों स्कूलों में जिस रीति से शिक्षा दी जा रही थी, वह एकदम ग़लत थी। शिक्षा देने का ढंग तो उनके समय ही का उत्तम था। स्कूल ही में छात्र को इस ढंग से पढ़ाया जाता था कि घर जाकर पढ़ने अथवा रटने की उसे आवश्यकता ही न रहती थी। तभी उन्होंने उसी अनूठे ढंग से चेतन को शिक्षा देने का निश्चय किया। उनका दावा था कि छः महीने ही में अपने विशेष ढंग से शिक्षा देकर वे चेतन को मैट्रिक में पढ़ने वालों के बराबर ले जायँगे।

चेतन की माँ को जब उनके इस निर्णय का पता चला तो वह डर से सहम गई। अपना यह ढंग पंडित शादीराम अपने बड़े लड़के पर भी आज़मा चुके थे और फल यह हुआ था कि माँ ने विवश होकर उसे अपने मायके भेज दिया था। उसने एक दो बार डरते डरते कहा भी कि चेतन अभी बच्चा है, उसमें जान तो है नहीं, वह पढ़ेगा क्या? पर पिता 'सैला खुर्द' के स्टेशन पर नये नये आये थे और उन्हें पीने-पिलाने वाले मित्रों का पता न था, इसलिए उनके पास अवकाश काफ़ी था। इस अवकाश को उन्होंने सार्थक करना ही श्रेयस्कर समझा। गाड़ी के स्टेशन से चले जाने के बाद वे घर आ जाते और चेतन को अपने नये ढंग के अनुसार पढ़ाने का प्रयत्न करते।

सब से पहले उन्होंने चेतन को गीता के कुछ श्लोक रटाये—"नैनम् छिन्दन्ति शस्त्राणि"......आदि आदि। और जब चेतन ने उन श्लोकों को कंठस्थ करने में असाधारण मेधा का परिचय दिया तो चेतन के पिता ने सिर, नाक, आँख, कान, ओठ, मुंह, टाँग, पैर आदि शरीर के भिन्न भिन्न

अँगों की अँग्रेज़ी बताई। इसके बाद उन्होंने उसे इन अँग्रेज़ी शब्दों के हिज्जे सिखाने शुरू किये।

धीरे-धीरे वे उसे ऐसे शब्दों के हिज्जों पर ले आये जिनमें कुछ अक्षर लिखे तो जाते हैं पर बोले नहीं जाते, जैसे White, write, night. might आदि। चेतन को यह सब समझ में न आता। जब अक्षर लिखे जाते हैं तो बोले क्यों नहीं जाते? पर पिता से पूछने का साहस उसे न होता। वह चुपचाप उन्हें रट लेता। पिता ने उसे जितने शब्द और जितने हिज्जे बताये, चेतन ने उन्हें तत्काल रट लिया और पंडित शादीराम ने फ़तवा दिया कि बड़ा होकर वह अवश्य डिप्टी कमिश्नर बनेगा और अपने इस मेधावी पुत्र को डिप्टी कमिश्नरी के योग्य बनाने में उन्होंने अपना कर्तव्य भी शीघ्रतिशीघ्र पूरा कर देना उचित समझा।

पढ़ने में बच्चे के उल्लास और पढ़ाने में पिता की तत्परता देख कर माँ का हृदय काँपा करता। किन्तु चेतन अपनी बाल-सुलभ जिज्ञासा के कारण हर शब्द की अँग्रेज़ी पूछता और पिता सोल्लास उसे बताते।

शब्दों और उनके हिज्जों के बाद उन्होंने चेतन को अँग्रेज़ी के छोटे-छोटे वाक्य बताने आरम्भ किये। जैसे—

वह जाता है = He goes.

वह स्कूल को जाता है = He goes to school.

वह राम और श्याम के साथ स्कूल को जाता है = He goes to school with Ram and Shyam.

वह राम और श्याम के साथ ताँगे में स्कूल को जाता है = He goes to school with Ram and Shyam in a tonga.

जब उसने ये वाक्य याद कर लिये और यह भी सीख लिया कि क्रिया के साथ s अथवा es कहाँ लगता है, we, you, they, के साथ निरा go और he तथा she के साथ goes क्यों आता है तो चेतन के

पिता ने उसे भूत और भविष्यत् के वाक्य बताये। जब गाड़ी स्टेशन पर आती तो वे अपने इस मेधावी पुत्र को बुला लेते और बड़े गर्व के साथ गार्डों के सामने उससे अँग्रेज़ी के वाक्य पूछते। जब वह ठीक ठीक बता देता और गार्ड आश्चर्य-चकित से इस नन्हें से बालक की ओर तकते रह जाते तो चेतन के पिता उसे उठा कर चूम लेते। उनकी बड़ी-बड़ी मूंछें, पतली पैनी दूब की भाँति चेतन के कोमल गालों में चुभ जातीं। उसका साँवला रंग और भी साँवला हो जाता और जब पिता उसे नीचे उतारते तो वह भाग जाता और माँ को जाकर अपनी कारगुज़ारी सुनाता। सुनते सुनते माँ के ओठों पर गर्वीली मुस्कान आ जाती, फिर सहसा वह मुस्कान विषाद की गहरी रेखाओं में परिणत हो जाती। माँ चुपचाप शून्य में देखने लगती और विषाद-रेखाएँ उसके ओठों से फैल कर सारे मुख-मंडल पर छा जातीं।

तभी एक दिन पंडित शादीराम ने चेतन को उस समय बुलाया जब गाड़ी जा चुकी थी। बात यह थी कि उनका एक मित्र अपने दसवीं श्रेणी में पढ़ने वाले लड़के के साथ 'राहों' जा रहा था। चेतन के पिता ने उसे गाड़ी से उतार लिया था और खाने की दावत भी दे दी थी और देसी शराब का एक अद्धा भी ठेके से लाने के लिए पानी वाले को भेज दिया था। चेतन जब पहुँचा तो उसके पिता ने पहले बड़े अत्युक्तिपूर्ण शब्दों में उसकी स्मरण-शक्ति और उसकी बुद्धि के चमत्कार का उल्लेख किया और फिर उन्होंने अचानक अपने उस मित्र के लड़के से दो-चार शब्दों के हिज्जे पूछे। कुछ उनकी सूरत, कुछ उनकी बड़ी-बड़ी मूंछें, कुछ उनकी लाल लाल आँखें, कुछ उनके स्वर की कर्कशता— उस बच्चे ने कई बार उनकी ओर देखा और सहमा-सा चुप बना रहा। तब जैसे विजेता के उल्लास से उन्होंने चेतन की ओर देखा और मूंछों को बल देते हुए कहा, 'इधर आओ।' चेतन का ख्याल था, शायद वे उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरेंगे या उसे उठा कर अपनी जांघ पर बैठा लेंगे। पर जब

उससे केवल इतना ही कहा गया, 'इधर आओ' और वह भी कर्कश स्वर में तो वह मन ही मन तनिक डर गया, पर प्रकट साहस बनाये हुए पिता के पास चला आया।

तभी पानी वाला शराब की बोतल ले आया। बोतल को देखते ही चेतन के पिता की आँखों में लाली के डोरे कुछ और गहरे हो गये और उनमें एक पाशविक-सी चमक उत्पन्न हो उठी। कार्क खोलते हुए उन्होंने चेतन से पूछा—

"सफ़ेद की अँग्रेज़ी क्या है?"

"व्हाइट"

"यह तुम खड़े कैसे हो, सीधे खड़े हो!"

चेतन सीधा खड़ा हो गया।

पानी वाले ने मेज़ पर दो कटोरियाँ रख दीं। कार्क खोल कर थोड़ी-थोड़ी मदिरा दोनों कटोरियों में उंडेलते हुए चेतन के पिता ने चेतन को हुक्म दिया—

"हिज्जे करो।"

"डब्लयू...डब्लयू...आई,...टी, ई।"

"क्या?" चेतन के पिता बोतल को रखते हुए गरजे और तड़ से एक तमाचा चेतन के गाल पर पड़ा और कनपटी तक उसकी खाल सुलग उठी। उसने हकलाते और काँपते स्वर में गाल पर हाथ रखते हुए कहा, "नहीं जी, डब्लयू, एच, आई, टी, ई।"

"पहले क्यों नहीं बताया? मादर......!" और भयंकर गालियों के साथ एक थप्पड़ उसके दूसरे गाल पर पड़ा, और एक मुक्का उसकी पीठ पर।

चेतन डर से काँपने लगा। मुक्का इस ज़ोर से उसकी पीठ पर पड़ा था कि उसकी पीठ दुहरी हो गई थी। चेतन के पिता ने कटोरी में पड़ी हुई शराब को एक ही घूँट में ख़ाली करके मुंह बनाकर कुल्ला किया और

पानी वाले को गाली दी कि वह अचार क्यों नहीं लाया। पानी वाला अचार लेने के लिने लिए भागा और चेतन के पिता चेतन की ओर मुड़े। पर चेतन को इसके बाद कुछ भी याद नहीं। उसे कुछ कुछ ऐसा आभास है कि उसकी आँखों के आगे पर्दा सा छा गया था—उसकी उस चेतना के आगे भी, जो उसके मस्तिष्क में बैठी उसे हिज्जे, शब्द और वाक्य सुझाया करती थी। उससे दूसरे शब्दों के हिज्जे पूछे गये थे (वाक्य पूछने की नौबत ही न आई थी) और न जाने कैसे, उसने काँपते-काँपते जो हिज्जे किये थे, वे सब के सब ग़लत थे। उसके पिता उन्मादी की भाँति उसे पीटने लगे थे और उस गार्ड ने बड़ी कठिनाई से उसे उनके चंगुल से छुड़ा कर दरवाज़े के बाहर किया था।

चेतन स्टेशन के कमरे से निकला तो लज्जा, क्रोध और ग्लानि से उसका नन्हा सा हृदय भर रहा था। आँसू अनायास उसकी आँखों से निकले जा रहे थे। वह किधर जा रहा है, कहाँ जा रहा है, उसे कुछ बोध न था। वह रोता जा रहा था, हाथ की उलटी तरफ़ से आँसू पोंछता जा रहा था और भर आने के कारण बार-बार नाक को सुड़कता जा रहा था। वह घर की ओर न गया था। न जाने क्यों माँ के सामने यों रोते जाने में उसे लज्जा आ रही थी, शायद उसके नन्हें से हृदय में कहीं नन्हा सा 'अहम्' आ बैठा था और उसके 'अहम्' को माँ के सामने यों रोते जाना स्वीकार न था। वह सीधा माल-गोदाम में गया था और गेहूँ की बोरियों में मुंह छिपा कर रोता रहा था। पके हुए अनाज की सोंधी-सोंधी गंध उसके नथुनों में प्रवेश करके एक विचित्र तन्द्रा सी उत्पन्न कर रही थी। वह सो गया था, किन्तु इस नींद ने उसके मन से उस लज्जा, उस ग्लानि के बोझ को हल्का न किया था। वहीं सोते-सोते उसके सामने कुछ वैसा ही भयानक दृश्य आ गया था। उसने स्वप्न में अपने पिता को डाँटते-फटकारते सुना था। वह जाग उठा था। उसने सुना कि उसके पिता माल-गोदाम की ओर आ रहे हैं। वह चुपचाप बोरियों से उतर कर खिसक गया था।

माल-गोदाम से निकल कर वह खेतों-खलिहानों में घूमता रहा था। उसे खाने-पीने की चिन्ता न थी, खो जाने का भय न था। वह घूमता रहा था - निरर्थक, निरुद्देश्य, निरुत्साह !

वह रहंट पर गया और कुएँ की जगत पर बैठ कर चुपचाप रहंट की रूँ-रूँ ......रीं-रीं......सुनता रहा था; कृषक बालक को बड़े मज़े से गाधी पर बैठे, कभी-कभी टटकारी भरते, बैलों को लगातार उसी चक्कर में घूमते, रहंट की टिंडों को भर-भर कर ख़ाली होते देखता रहा था।

वह खेतों में गया था और कितनी देर तक वहाँ गेहूँ की बालियों को बैलों के खुरों के नीचे पिस कर दानों को छोड़ते; सूप की सहायता से भुस और दानों को अलग अलग होते; सांघे तथा तंगलियों से दानों के ढेर बनते और बोरियों में अनाज को भरे जाते तकता रहा था।

वह चरसे पर भी गया था। कितनी ही देर तक वह मन्त्र-मुग्ध सा वहाँ खड़ा चरसे की 'लाओ' (रस्से) को बैलों द्वारा खींचे जाते देखता रहा था। जब बैल लाओ को लेकर नीचे को जाते तो हाँकने वाला तनी हुई लाओ पर बैठ जाता। उधर बैल ढलवान में पहुँचते इधर चरसा ऊपर आ जाता और कृषक उसे थामते हुए ज़ोर से संगीत भरे स्वर में हाँक लगाता—"बली रब्ब ओ !" और चरसे से पानी की नहर बहने लगती। चरसे को ख़ाली कर वह कुएँ में फेंकता। बैल फिर ऊपर को चल पड़ते; चर्खी पर से लाओ घिसटती जाती। अर्से तक वहाँ खड़ा वह निरन्तर यही क्रम देखता रहा।

किन्तु प्रकट ये दृश्य देखते हुए भी वह उन्हें न देख रहा था। उद्भ्रान्त सा वह घूमता रहा था। उसकी आँखें तो इन सुखद दृश्यों के स्थान पर कोई दूसरा ही दृश्य देखती रही थीं; अनायास भर-भर आती रहीं थीं और वह उस हाथ से जो उड़ती हुई मिट्टी के कारण अब मैला हो चुका था, अपने आंसू पोंछता रहा था। उसके नन्हें से हृदय में बवंडर सा उठता मिटता रहा था। उसे गहरा दुख था। पर वह दुख निर्दोष पीटे जाने का

था, सोचने का अवसर दिये बिना पीटे जाने का था, अथवा दूसरे लड़के के सामने पीटे जाने का, इसका विश्लेषण उसका नन्हा सा मस्तिष्क न कर पा रहा था। उसके गालों की टीस मिट गई थी पर उसके नन्हें से हृदय में जो घाव बन गया था, उसमें असह्य पीड़ा हो रही थी।

वहीं लेटे-लेटे चेतन को महसूस हुआ कि वह घाव तो अब भी वहाँ है और उसमें पीड़ा उतनी ही तीव्र है। वह आज तक इस पीड़ा को कैसे भूला रहा? उसके सामने उसका अपना नन्हा उद्भ्रान्त रूप अपनी समस्त व्यथा के साथ आ गया। अपने क्रूर पिता का चित्र भी उसके सामने आया और उसके शैशव का वह दुखद अध्याय जैसे नये सिरे से उसके सामने खुल गया।

सन्ध्या को जब वह थक कर और तनिक आश्वस्त होकर घर आया था तो उसके घुटनों तक मिट्टी चढ़ी हुई थी, बाल बिखरे हुए थे, आँखें रोने के कारण उबल आई थीं और मैले हाथों से बार बार पोंछने से उसके चेहरे पर धब्बे बन गये थे। माँ उस समय गाय का दूध दुह कर उसे चूल्हे पर गर्म करने जा रही थी। चेतन को इस अवस्था में देख कर उसने उसे छाती से लगा लिया। चेतन चाहता था उसके आँसू न निकलें, पर सहसा उसे रोना आ गया। किन्तु जब उसने देखा कि उसकी माँ भी रो रही है तो वह आप से आप चुप हो गया। तब उसे चुप होते देख कर अथवा अपनी व्यावहारिक बुद्धि के कारण माँ ने भी जैसे अपने आँसुओं को बरबस रोक लिया। उसे अपनी छाती से अलग किया और सिगड़ी में उपलों की आग पर सुबह से चढ़े गाढ़े दूध की मलाई उतार कर उसके साथ चेतन को रोटी दी। जब वह खाने लगा तो माँ ने धीरे-धीरे रसोई का काम करते-करते चेतन से हिन्दी

शब्दों का अंग्रेज़ी अनुवाद, उनके हिज्जे और उन समस्त वाक्यों की अंग्रेज़ी सुनी जो चेतन के पिता ने उसे बताये थे। खाना खाते-खाते चेतन ने अपनी माँ को वे सब शब्द, हिज्जे और वाक्य ठीक-ठीक सुना दिये। वह न कहीं अटका, न कहीं भूला। किन्तु जब रात को पिता ने उसे सोते हुए झकझोर कर उठाया और शराब के नशे में उसे अत्यन्त अश्लील गालियाँ देते हुए डाँटा कि वह इतनी जल्दी क्यों सो गया है और कुछ कठिन शब्दों के हिज्जे पूछे तो चेतन बिना अटके न बता सका। वह अटका कि उसके थप्पड़ पड़ा, थप्पड़ पड़ा कि उसे सब कुछ भूल गया। इसके बाद उसे इतना स्मरण है कि वह भूलता गया और पिटता गया। हुक्के की नै से पिता ने उसे पीटा और एक बार जब पिटता-पिटता वह दीवार तक आ गया और नै बरामदे के खम्भे में लगने से टूट गई तो पिता ने अपने नशे और क्रोध के आवेश में चूल्हे में से अधजली लकड़ी उठा ली। तब रोते-रोते माँ बीच में आ गई। तीन चार लकड़ियां उसके लगीं, एक बार चेतन के घुटने पर पड़ा। घुटने का माँस उड़ गया। पिटते पिटते उसका पेशाब निकल गया। वह न जाने कितना पिटता यदि परदादी गङ्गादेई अपनी अन्धी आँखों और कमान सी कमर को लठिया के सहारे सम्हाले हुए चेतन के पिता को गालियाँ देती हुई उनके बीच न आ जाती और चेतन पर खींचकर मारी हुई लकड़ी उसकी पीठ पर न जा लगती और अपनी दादी को पीटने के पाप का ख़्याल करके चेतन के पिता का नशा न टूटता।

शैशव की धुँधली गुफाओं से निकल कर ऐसी कई घटनाएँ चेतन के सामने आ गईं जिनके फल-स्वरूप वह आज ही की भाँति खिन्न, क्लान्त, दुखी और व्यथित हुआ था। वह तो सदैव ही पिटे हुए पिल्ले की भाँति छिपता, डरता और दुबकता रहा है। वह सोचने लगा—कभी अपने समवयस्क लड़कों से वह नहीं मिल पाया, उनके खेलों में शामिल नहीं हो

सका। बड़े भाई की भाँति ताश, शतरज, चौपड़, कनकौएबाज़ी और छोटे भाइयों की भाँति गिल्ली-डंडा, कबड्डी, जंग-पलंगा, लम्बी लम्बी टीलों और दूसरे ऐसे खेलो में भाग नहीं ले सका। वह सदैव एकाकी बना रहा। पिता ने दोनों टाँगों से पकड़ कर शून्य मे उसे इस तरह झकझोरा था कि उसकी आतें सदा के लिए निर्बल हो गई थीं। उसका पेट दर्द किया करता था और कई बार ऐसी असह्य पीड़ा उसकेसिर व पेट में होती कि वह रात रात भर रोया करता था। और आज वह जो कुछ था, उसी अपने दुखद बचपन के कारण था।

वह उठ कर बेचैनी से घूमने लगा।

कुन्ती

पश्चिम की ओर से वर्षा का तूफान उठा, चीलों के झुण्ड के झुण्ड आकाश पर दायरे बनाने लगे, ग्वाले ने गायों को हांक लगाई और गांव की ओर ले उड़ा; धोबियों ने घास पर फैलाये हुए कपड़े समेट लिये; किसान बैलों को लेकर जहां पनाह मिली, जा छिपे; देहातिनों ने कमरें कस लीं और सूखे हुए उपलों को दालानों के कोनों या ईंधन की कोठरियों में रखना शुरू कर दिया; कहीं आंगन में बिखरी हुई मिर्चें समेटी जाने लगीं। बर्फ की भांति चुभने वाली तेज ठण्डी हवा चली और देखते-देखते सारा आकाश मेघाच्छन्न हो गया और फिर मूसलाधार वर्षा, ओले और झक्कड़!

कुन्ती शाल ओढ़े, बालाखाने की खिड़की से बादलों के इस उत्पात का तमाशा देखने लगी। आखिर जीवन में कुछ तो नवीनता आई, कुछ तो रङ्गीनी पैदा हुई। वह ग्रामीण दृश्यों की एकरसता से तंग आ गई थी—कटे हुए खेतों की दृष्टि की सीमा तक फैली हुई ठूंठियां, सुबह-सुबह ही चर्सों से आने वाली "बेली रब्ब ओ" की कर्कश आवाजें, सूनी लम्बी दुपहरें और ऊबड़-खाबड़ रास्ते—उसे इन सबसे नफरत हो गई और रह-रह कर उसकी आंखों में अनारकली, माल, लारेन्स के नजारे घूम जाते थे—नित नया रंग, नित नया खेल, नित नया शग़ल! गांव में तो वह अपने आपको बंदिनी समझने लगी थी, यहां किताबों में दिल न लगता था, गाने में दिल न लगता था, सैर करने में दिल न लगता था। वह इस विरस जीवन से ऊब उठी थी और यहां से भाग जाना चाहती थी। वर्षा के

*परमात्मा ही मालिक है।

तूफान ने इस एकरसता को मिटा दिया और देहात से विरसता का पर्दा हटाकर वहां रस का सञ्चार कर दिया।

बादलों की तह पर तह छा रही थी, तूफान पूरे जोरों पर था, कुन्ती चाहती थी कि गांव इस तूफान से उड़कर कहीं लाहौर के समीप जा पड़े, जहां से वह तत्काल अपनी सहेलियों के पास भाग जाय—गर्म छोटे-छोटे कमरों में नर्म-नर्म कौचों पर, ताश खेले,..... और चाय की चुस्कियों के साथ कवियों की कविता का आनन्द उड़ाये।

वायु का रुख बदला, वर्षा की बौछार अन्दर आने लगी, छींटे उसकी शाल पर गिरने लगे। उसने खिड़की बन्द कर दी और बिस्तर पर जा लेटी। बाहर प्रलय का शोर था। मकानों के किवाड़ खड़खड़ा रहे थे, झोंपड़ियों के छप्पर उड़े जाते थे। उसने शाल से मुंह ढक लिया और कितनी ही देर तक नीरव, चुपचाप लेटी रही। आखिर कल्पना-लोक की सैर करते-करते उसका मस्तिष्क थक गया। वह उठी, बाहर उसी तरह शोर वर्षा था, पर कमरे में निस्तब्धता छायी हुई थी, केवल ताक में रखी हुई घड़ी टिक टिक कर रही थी और छत में लटकता हुआ कागज का एक पुराना फानूस हिल रहा था। वह रसोई-घर में चली गयी। दहकती हुई अंगीठी के पास जा बैठी। कुन्ती की मां भी वहीं बैठी थी। उसी रोग का शिकार। कुछ क्षण दोनों चुपचाप बैठी आग तापती रहीं। आखिर कुन्ती ने मौन भंग करते हुए कहा—"मां, यह देहाती कैसे सारी-सारी उम्र यहां गुजार देते हैं, मुझे तो यह पन्द्रह दिन ही पन्द्रह वर्ष हो गये।"

मां बोली, "और मैं सोचती हूँ कि लोग, जो नगरों को छोड़कर देहात की दुनिया आबाद करने को कहते हैं, किस दिल के मालिक हैं?"

कुन्ती ने हंसने का प्रयास किया, उसी क्षण बाहर से किवाड़ खटखटाने की आवाज आई।

कुन्ती के दादा दीवान हरिराम असामियों से रुपया वसूल करने के

लिए पास के गांव में गये थे, कुन्ती को उन्हीं का ख्याल आ गया। वह भागी-भागी नीचे गई और ···दरवाजा खोल दिया।

कुछ क्षण तक वह हैरान-सी खड़ी रही, फिर ऊपर भाग गई। "मां, मां, बाहर दरवाजे पर कोई बेहोश पड़ा है"—उसने हांफते हुए कहा।

मां कुन्ती के साथ नीचे आई, बाहर दरवाजे की सीढ़ियों में एक युवक चेतना हीन सा गिरा पड़ा था। उसके तन पर केवल एक मैला कुर्ता और धोती थी, सिर के लम्बे बाल भीगकर घुंघराले हो गये थे और उसके मस्तक को ढांप रहे थे, गोरे-गोरे उसके पांव सुर्ख हो गये थे और उसका सिर लुढ़क कर दीवार के साथ जा लगा था।

"दिलीप, ओ दिलीप," मां ने नौकर को आवाज दी।

और फिर कुन्ती ने पुकारा, "दिलीप—अरे, ओ दिलीप।"

लेकिन दिलीप वहां नहीं था, चौपाल में अलाव जल रहा था और सब ओर से देहाती इकट्ठे होकर वहां राग-रंग में निमग्न थे, दिलीप इस नाटक का मुख्य अभिनेता था।

मां ने बैठ कर अचेत युवक को हिलाते हुए कहा, "बेचारा सर्दी में मर जायेगा, इसे कौन अन्दर ले जाये?"

कुन्ती आगे बढ़ी, "तुम हटो, मैं उठाती हूँ।" यह कहकर उसने मां के 'न, न' करने पर भी उस लम्बे-पतले युवक को उठा लिया। उसके लम्बे लम्बे बाल उसके मस्तक और आंखों से हट गये, कुन्ती ने उसके गोरे सुन्दर मुख को ओर देखा, उसके शरीर में सनसनी-सी दौड़ गई और दूसरे क्षण उसने उसे निचले दालान में चारपाई पर डाल दिया। फिर वह दौड़कर ऊपर से अँगीठी ले आई। मां युवक को सेक देने लगी। ब्राण्डी की बोतल से कुन्ती ने कोई आध औन्स ब्राण्डी उसके मुंह में डाल दी। युवक ने आँखें खोलीं।

दो दिल धड़के।

युवक ने फिर आंखें बन्द कर लीं। मां उसके लिए दूध गरम करने लगी।

मां ने पूछा—"तुम्हारा घर कहां है?"

युवक की ज़बान में रस था, सभ्यता भी थी। शायद विपत्तियों के दबाव ने जवानी की उद्दण्डता को मिटा दिया था। विषाद से हंसकर बोला, "अब घर कहां है मां जी, घर-बार तो जो कुछ था, सब कर्ज़ के सागर में ग़र्क हो गया।"

"मां-बाप हैं?" कुन्ती ने पूछा।

युवक ने सिर हिला दिया।

दादी भी पूजा छोड़कर आ गई थी, बोली, "आखिर तुम आ किधर से रहे हो बेटा?"

"बड़ी लम्बी दास्तान है मां जी!" युवक ने विनय से कहा "इतना समझ लीजिए कि आफत का मारा एक अनाथ हूं। मां बचपन में मर गई थी। बाप थे, थोड़ी-सी जमीन भी थी, पर बुजुर्गों के कर्ज़ को निबटाते निबटाते वे स्वयं भी निबट गये। ग़रीब अनाथ का कौन सहायक, किसी ने मुट्ठी भर आटा भी न दिया, ग़रीबों का ग़ांव, मजदूरी भी न मिलती, जब एक-दो दिन फाके से गुजरे, तो लाचार अपनी सारी जायदाद गिरवी छोड़ एक मैली-सी चादर ले, अपने पूर्वजों के ग़ांव को नमस्कार कर, चल पड़ा। रिश्ते-नातेदार कोई नहीं, जो हैं, वे मैं समझता हूं इस विपत्ति में मेरे साथ कोई नाता स्वीकार न करेंगे, इसलिए चुपचाप स्टेशन की ओर चल दिया। टिकेट के लिए धन तो पास था नहीं, इसलिए बिना टिकट ही गाड़ी पर सवार हो गया। बयास पर एक टिकट बाबू ने ठोकरें मार कर गाड़ी से उतार दिया। स्टेशन मास्टर ने एक दिन बैठा रखा

और फिर भी जब मेरे पास से जुर्माना न निकला, तो मेरी चादर किराये के बदले नीलाम कर दी और स्टेशन से बाहर धकेल दिया। मैं चुपचाप जिधर मार्ग ले चला, चल पड़ा, और आंधी, वर्षा और ओलों का मुकाबिला करता आपके दरवाजे पर आ पहुँचा। तब जाने क्या हुआ, कुछ सिर चकराया या आँखों के आगे अंधेरा छा गया कि बेहोश हो गया। अब आपके आश्रय में हूँ। चाहे दो रोटियों का प्रबन्ध करके उबार दीजिए, चाहे फिर विपत्तियों के मुँह मे छोड़ दीजिए।"

यह कहते-कहते युवक की आंखो में आंसू आ गये, गीली कमीज़ के छोर से उसने उन्हें पोंछ लिया।

दादी ने आर्द्र कण्ठ से पूछा, "बच्चा तेरा नाम क्या है?"

"मोहन।"

तब कुन्ती की मां का दिल भी, जो इतना कोमल न था, भर-भर आने को हो गया और कुन्ती तो चुपचाप अनिमेष दृगों से उसकी ओर देखती रह गयी। उसका लम्बा सुन्दर शरीर, उसकी थकी-थकी मस्त आंखें, उसके लम्बे घुँघराले बाल, उसकी उदास मुखाकृति और फिर उसका करुण स्वर—सब कुछ उसके दिल में बस गया। और इस अशिक्षित गँवार युवक के लिए उसके हृदय में अपार स्नेह का समुद्र उमड़ आया। उसे सान्त्वना देकर सब ऊपर चली गयीं और मोहन चुप बैठा जाने क्या सोचने लगा कि कुन्ती खादी का एक कुर्ता और धोती लिये उतरी और कपड़ों को उसकी चारपाई पर फेंकते हुए उसने कहा—"गीले कपड़ों को उतार कर यह पहन लो।" और फिर जाते-जाते मुड़कर बोली "तुम चिन्ता न करना, मैं दादा के आने पर अवश्य तुम्हारे बारे में उनसे कहूँगी।"

यह कहते कहते निमिष-मात्र के लिए वह भूल गयी कि वह अभी बी० ए० की परीक्षा देकर आयी है और वह एक गँवार युवक है।

मां ने गाड़ी पर बैठते हुए पूछा, "तो कुन्ती, तुम न चलोगी?"

"नहीं मां, अभी मेरा जाने का इरादा नहीं।"

"लेकिन पहले तो तुम यहाँ से जाने को बेचैन थीं।"

"तब सब कुछ नया-नया था, किसी से बातचीत तक न कर सकती थी, अब तो तुम देखो, मैंने लड़कियों की पाठशाला खोल दी है, आखिर लाहौर जाकर मैं क्या करूँगी, व्यर्थ समय ही तो नष्ट करूँगी, नहीं माँ, अभी मैं यहीं रहूँगी। और फिर तुम देखो, दादी भी तो बीमार हैं और मेरी देख-रेख के बिना उन्हें कितना कष्ट होगा।"

"खैर तुम्हारी सेहत भी यहाँ ठीक हो रही है, पर ज्यादा देर यहाँ न ठहरना, इम्तिहान का नतीजा निकलते ही मैं तुम्हें तार भेजूंगी, इसके बाद तुम चली आना।"

और यह कहकर गाड़ीवान को गाड़ी हांकने की आज्ञा उन्होंने दी।

कुन्ती ने मा को नमस्ते की और जब गाड़ी कुछ दूर चली गई, तो वह वापस मुड़ी, ड्योढ़ी के दरवाजे पर मोहन खड़ा था, बोला, "माँ चली गई?"

"हाँ!"

"और आप!"

"मैं स्कूल छोड़कर कैसे जा सकती हूँ?"

और यह कहकर और मोहन की ओर एक स्नेह-भरी दृष्टि डालकर कुन्ती ऊपर चली गयी।

कुन्ती के दादा दीवान हरिराम गाँव के प्रसिद्ध साहूकार थे, जमीन भी उनकी काफी थी। कुन्ती के पिता का देहान्त हो चुका था, दीवान हरिराम ने तो उनको ऊँची शिक्षा दी थी, समय पाकर कुन्ती के पिता एगज़ेक्टिव इञ्जीनियर भी हो गये थे, कमाया भी उन्होंने काफी, पर आयु ने बहुत देर तक साथ न दिया। लाहौर में एक बंगला और कुछ जायदाद छोड़कर वे परलोक सिधार गये थे।

कुन्ती अपनी मां के साथ लाहौर में ही रहती थी, उसकी मां स्वयं एक बड़े पदाधिकारी की बेटी थी, पति के मरने का ग़म उन्हें हुआ था, पर ऐसा नहीं कि सारी दुनिया के काम छोड़ दें, क्लब में वे अब भी जाती थीं, पार्टियों में वे अब भी शरीक होती थीं, सिनेमा से भी उन्हें इतना परहेज न था, फिर वे कब इस नीरस गाँव में अधिक देर तक रह सकती थीं। ससुराल से उन्हें कभी भी इतना प्रेम न हुआ था, यह तो लाहौर में चेचक का जोर होने से वे कुन्ती को लेकर यहां आ गई थीं, पर अब जब बीमारी का प्रकोप कम हो गया था, उनके लिए यहां रहना असह्य था।

और कुन्ती के लिए अब हरिपुर पहले-सा उदास हरिपुर न रहा था। शुष्क और नीरस हरिपुर में अब कहीं से नव-जीवन का सञ्चार हो गया। वही दृश्य, जो पहले नफरत दिलाते थे, अब बरबस मन को अपनी ओर खींचने लगे। अब लाहौर और उसकी दिलचस्पियां स्मृति की चीज बन गई और ब्यास से पांच मील दूर यह गाँव ही कुन्ती के मनोरंजन का केन्द्र बन गया।

मोहन ने अपनी करुण कथा कुछ ऐसे लहजे से सुनाई थी कि कुन्ती का दिल पिघल उठा था। उसी शाम वर्षा के थम जाने पर जब उसके दादा दूसरे गाँव से वापस आये थे, तो उसने दादी के और उनके पीछे पड़कर मोहन को नौकर रखवा दिया था। दीवान साहब को भी एक व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो असामियों के पास जाते समय उनके साथ जा सके। नये कानूनों के कारण असामी निडर हो गये थे और कुछ उनमें भी पहली-सी जान न रही थी। उन्होंने युवक के गठे हुए शरीर की ओर एक निगाह डाली और उसे नौकर रख लिया, उसी दिन से मोहन वहाँ रहने लगा था।

दूसरे नौकरों और मोहन में जरा अन्तर था। यद्यपि वह भी घर का साधारण से साधारण काम करता था, पर फिर भी वह उनकी तरह मैले कपड़े न पहनता, बची-खुची रोटी न खाता। उसकी पोशाक यद्यपि खादी

के कुर्ते और धोती तक ही परिमित थी, किन्तु यह दोनों चीजें साफ-सुथरी होती थीं, खाना भी उसे अच्छा ही मिलता था। यदि कहीं दीवान साहब बाहर जाते, तो वह भी उनके साथ बाहर जाता, नहीं तो घर पर ही रहता।

मोहन कुछ अधिक पढ़ा हुआ न था और कुन्ती को इसी बात का दुःख था। वह चाहती थी, काश वह शिक्षित होता। प्रायः वह सूट और हैट में मोहन की कल्पना करती और प्रायः सोचती, मुझे यह इच्छा क्यों है और फिर अपनी इस असाधारण इच्छा को दबाने का प्रयत्न करती, किन्तु जितना ही वह उसे दबाने का प्रयास करती, उतनी ही वह इच्छा और बलवती हो उठती। एक दिन इसी प्रकार उसने एक चित्र बना डाला। सूरत तो मोहन ही की थी, पर एक सुन्दर सूट में वेष्टित। जब वह चित्र समाप्त हो गया, तो उसे अपने आप पर बड़ा क्रोध आया और उसने चाहा कि तसवीर को फाड़ दे, पर वह ऐसा न कर सकी।

मोहन को उसके पागलपन की खबर हो, ऐसी बात न थी। वह सदैव अपने काम में निमग्न रहता। उसने कभी कुन्ती के सामने निगाहें ऊँची न की थीं। कभी उसने कुन्ती को देखा ही न हो, यह बात नहीं थी। कभी जब उसकी दृष्टि दूसरी ओर होती, तो वह उसे देख लिया करता, पर उसकी आंखों में सदैव एक कौतूहल, सदैव एक आश्चर्य होता। हाँ, वह कुन्ती के एहसान को न भूला था। उसका कमरा वह विशेष सावधानी से साफ करता। अपनी परवाह उसे नहीं थी, अपनी ओर से वह पहले जैसा उदासीन बना रहता, न हजामत बनवाता, न बाल संवारता, और यद्यपि कुन्ती ने उसे कह रखा था—तुम्हें किसी चीज की जरूरत हो तो मुझे कहना—लेकिन आज तक कुन्ती एक भी जरूरत न सुन सकी थी।

एक दिन मोहन पूर्ववत् कमरे की सफाई कर रहा था, कुन्ती भी वहीं मौजूद थी। उसकी निगाहें पुस्तक पर थीं, पर वह पढ़ न सकती थी, रह-रहकर उसकी दृष्टि मोहन के चेहरे पर जम जाती। मोहन

ने भी यह बात अनुभव की थी और उस का हाथ ठीक काम न कर रहा था, शायद उसमें कुछ कम्पन भी था। एक बार दोनों की निगाहें चार हो गईं। दोनों के दिल फिर धड़क उठे। कुन्ती की भृकुटी तन गयी—"यह क्या स्वांग बना रखा है तुमने, न हजामत बनवाई है, न बाल संवारे हैं, क्या ऐसी पागलों सी सूरत लेकर तुम दादा जी के साथ असामियों के पास जाते हो।"

मोहन ने डरी हुई आंखों से कुन्ती की ओर देखा, लेकिन कुन्ती के चेहरे पर क्रोध नहीं था, ओठों के कोनों पर मुसकराहट फूट रही थी। मोहन का सीना उभर गया। इसके बाद शेविंग का सामान कुन्ती ने उसे मँगवा दिया। और फिर किस प्रकार उमने उसे उन लोगों की कहानियाँ सुना सुनाकर, जो पढ़ने के बाद अपनी साधारणता से उठकर ख्याति के ऊँचे आसन पर बैठे, कुन्ती ने उसे पढ़ने की प्रेरणा दी और किस प्रकार उसके हृदय में शिक्षा के लिए एक प्रबल आकांक्षा पैदा कर दी—यह एक लम्बी कहानी है, पर एक दिन काम-काज से छुट्टी पाकर मोहन पढ़ने बैठ गया और फिर रात को जब सब लोग सो जाते, वह पुस्तक लेकर दिये के आगे बैठा देखा गया।

तभी कुन्ती की माँ लाहौर जाने का आग्रह करने लगी। कुन्ती के लिए अब लाहौर में कोई दिलचस्पी न थी। उसका सारा ध्यान अब इस अशिक्षित युवक को शिक्षित बनाने पर केन्द्रित हो रहा था। माँ के साथ न जाने का बहाना बनाने के लिए उसने अपने घर ही में लड़कियों की एक पाठशाला खोल दी और उन्हें पढ़ाने लगी। किन्तु उसका यह शौक सच ही देहातिनों की निरक्षरता को देखकर पैदा हुआ था या नहीं, इसे कुन्ती का दिल ही भली भांति जानता था।

और जब एक साल बाद मोहन ने दो वर्ष का काम एक ही वर्ष में समाप्त करके 'हिन्दी भूषण' की परीक्षा सफलतापूर्वक दे डाली, तो कुन्ती की प्रसन्नता का वार-पार न रहा।

गुजरते-गुजरते तीन साल गुजर गये ।

और वह दिन आ पहुँचा जिसकी प्रतीक्षा में कुन्ती ने इतने दिन गिन-गिनकर गुजार दिये थे, देहाती लड़कियों की शिक्षा का बहाना बनाकर इर्द-गिर्द के गाँवों में पाठशालायें खोली थीं, लाहौर को त्याग कर इतने दिनों से हरिपुर को अपना निवास-स्थान बनाया था। आज बी० ए० का नतीजा निकलना था और मोहन ने बी० ए० की परीक्षा दी थी, उसे ही शिक्षित बनाने के लिए कुन्ती ने इतना आडम्बर रचा था। अपने वृद्ध दादा और दादी की सेवा की थी और उनपर जोर देकर गाँव में प्रौढ़ों के लिए एक शिक्षालय खोला था। यह सब इसीलिए कि मोहन भी पढ़ सके और अब जब कुन्ती की अनवरत प्रेरणा से मोहन इतना पढ़ गया था और उसकी परीक्षा का नतीजा निकलना था, कुन्ती का दिल धड़क रहा था।

रहा मोहन, वह आज और भी गम्भीर हो गया था। अपने सामने एक समाचार-पत्र रखे प्रकट वह बड़े ध्यान से उसे पढ़ रहा था, पर पंक्ति उसने एक भी न पढ़ी थी। उसके मस्तिष्क में जाने कौन-सा तूफान मचा हुआ था। यह तीन-चार वर्ष कुन्ती ने उसकी शिक्षा पर खर्च कर दिये थे, क्यों? कभी-कभी वह इसका आभास पा जाता था और तभी उसका दिल दहल जाता था। जब-तब वह चाहता, कुन्ती से खोलकर बात करे, पर उसने कभी आभास तक न दिया, मालूम भी न होने दिया कि इसमें कोई रहस्य भी है। और फिर वह सोचता, शायद मेरा भ्रम ही हो और तब श्रद्धा और भक्ति से उसका सिर झुक जाता। वह उसके सामने इस तरह चुप रहता, जिस प्रकार शिष्य अपने गुरु के सामने या स्वामिभक्त नौकर अपने स्वामी के सामने, पर फिर भी आज उसे महसूस हो रहा था कि नहीं, उसका सन्देह गलत नहीं और तभी उसके शिक्षित मस्तिष्क में हल-चल मच उठती थी।

शाम हो गयी थी और कुन्ती खिड़की के सामने कुर्सी डाले डाकिए की प्रतीक्षा कर रही थी। आज तक उसने अपने आप पर संयम रखा था। अपनी सारी शक्तियों से अपने दिल पर काबू रख उसने भरसक प्रयत्न किया था कि मोहन उसके दिल की बात न जान जाय, कहीं वह उसकी मुहब्बत के फेर में अध्ययन को भूल न जाय, किन्तु आज वह चाहती थी मोहन के सामने अपना दिल खोलकर रख दे, उसे प्यार करे, किन्तु नहीं, वह इस प्रकार अचानक उसके सामने यह समस्या उपस्थित न करना चाहती थी। परीक्षा-फल जानने के बाद वह उसे अपने सामने बिठा लेगी और अपने श्रम की दक्षिणा मांगेगी। वह उसे बता देगी कि वह क्या गुरु-दक्षिणा मांगती है। मोहन उससे नफरत नहीं करता, कुन्ती को विश्वास था वह उससे मुहब्बत करता है। पर स्वामी और सेवक की परिस्थति कुन्ती जानती थी, उसमें साहस नहीं, या शायद उसकी मुहब्बत कृतज्ञता के बोझ के नीचे दब गयी है, कुन्ती वह बोझ उठा लेगी, उसके साहस को छेड़कर जगा देगी, और फिर हरिपुर को छोड़कर लाहौर में नवजीवन की नींव रखेगी, मोहन को कोई न जानेगा, उसकी सखियाँ, ऐसा सुन्दर, ऐसा बुद्धिमान वर ढूंढने पर उसे बधाई देंगी और फिर कुन्ती एक कालेज खोलेगी और मोहन उसका मैनेजर बन जायगा। तभी उसे आशङ्का होती कि उसकी मां एक नौकर के साथ अपनी एकमात्र लड़की की शादी करना कभी पसन्द न करेगी और शायद समाज...... ..पर वह इन आशङ्काओं को सिर के एक झटके से हटा देती। यदि लाहौर उनको स्वीकार न करेगा, तो वह उसे लेकर कहीं और चली जायेगी, दिल्ली या कलकत्ते—और तभी उसने देखा कि डाकिया आ रहा है, कुन्ती भागी-भागी नीचे आई। लिफाफा लिया, फाड़ा, मोहन पास। उल्लास अपनी सारी सुर्खी उसके सुन्दर मुख पर बिखेर गया। उसने डाकिए को एक रुपया दिया और मोहन के कमरे की ओर दौड़ी गयी। चुपचाप ठोढ़ी हथेली पर रखे वह बैठा था और समाचार-पत्र धरती पर गिर गया था।

मोहन तुम पास हो गये, १३०, बड़े नम्बर मारे तुमने, और जैसे

उछलती हुई अपनी दादी को यह समाचार सुनाने के लिए भाग गयी।

न उसके चेहरे पर उल्लास, न विषाद, मोहन चुप उसी तरह बैठा रहा।

"मैं आप से एक दिन की छुट्टी मांगता हूँ।"

कुन्ती अपने दादा के पास जा रही थी, बोली "क्यों, एक दिन के लिए कहां जाओगे ?"

"दीवान जी को शायद आपने मेरे पास होने की खबर बता दी है.........."

"नहीं, मैंने तो नहीं बताई, मैं तो अभी उनके पास जा रही हूँ।"

"तो शायद किसी और ने बता दी होगी, वे अभी आये थे, कहते थे—मोहन मैं बड़ा खुश हूँ, आज से तुम मेरी जायदाद के मैनेजर हुए, देखो तुम अपने आदमी हो, तुमसे विश्वस्त-व्यक्ति अब कहां मिल सकता है।"

कुन्ती का उत्साह कुछ मन्द पड़ गया, बोली "फिर ?"

"मैं जरा अपने गाँव तक जाना चाहता हूँ।"

"जरा गांव तक, क्यों ?"

"मेरा मकान और जमीन जमींदार के अधिकार में है, मैं जानना चाहता हूँ कि उसका कुल कितना रुपया मुझे देना है, बड़ों की निशानी है, अब जब आपकी कृपा से मैं इस योग्य हो गया हूँ, तो उसे क्यों न वापस लूं।"

"तो फिर कल चले जाना।"

"मैंने प्रतिज्ञा कर रखी है, और फिर मेरे पास रुपया भी है, वह दे आऊँगा।"

"रुपया !"

"आप जो वेतन देते रहे हैं, उसमें अधिकांश जमा होता रहा है, वह दे आऊंगा।"

एक क्षण के लिए इस परिश्रमी, दयानतदार, सच्चरित्र, सुन्दर युवक के प्रति मन ही मन में कुन्ती का सिर झुक गया, उसका चेहरा खिल गया, आखिर उसका चुनाव गलत न था, बोली, "दो दिन ठहर कर चले जाते, मैं आज पाठशाला की लड़कियों को दावत करने वाली थी।"

मोहन ने जैसे दीवार की ओर देखते हुए कहा, "मैं न जाता, पर... ..." उसने सिर झुका लिया, और फिर जैसे फर्श की ओर देखता हुआ, "मुझे एक जरूरी काम और भी है।"

कुन्ती उस वक्त खुश थी, बोली, "तो अच्छा कल आ जाना, मैं कल ही लड़कियों की दावत करूंगी। और देखो, कल किसी तरह न रुकना, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी और कल मुझे तुमसे एक आवश्यक बात भी कहनी है।"

मोहन अधिक देर न ठहर सका, नमस्कार करके चला गया। कुन्ती दादा के पास जाना भूल गई। सोचने लगी, यह मोहन का कैसा व्यवहार है, उसके मन में कई प्रकार के सन्देह उठे, पर उसने बरबस सबको मन से निकाल दिया और दिलीप को बुलाकर लड़कियों को निमन्त्रण देने के लिए कहा।

दूसरे दिन सुबह ही से तैयारियां होती रहीं। एकादशी के दिन दीवान हरिराम के घर सदैव ही ब्रह्मभोज होता था, किन्तु कुन्ती को ब्रह्मभोज में कोई धार्मिक श्रद्धा हो—यहबात न थी, उसे तो अपनी खुशी को किसी ओर लगाना था, ब्रह्मभोज के साथ-साथ पाठशाला की सब लड़कियों का भी भोजन था और कुन्ती सुबह ही से इन तैयारियों में व्यस्त थी।

११ बजे ही लड़कियों का आना शुरू हो गया। मोहन भी उन्हें पढ़ाया करता था, सब ऐसी खुश थीं, जैसे मोहन नहीं, वे सब पास हो गयी हों। पाठशाला में आज छुट्टी ही थी। एक बजे तक सबकुछ तैयार हो गया।

ब्रह्मभोज आरम्भ हो गया। लड़कियां आंगन में बिठा दी गयीं। कुन्ती काम तो कर रही थी, पर उसके कान ड्योढ़ी की ओर लगे हुए थे, रह-रहकर, बहाने बना-बनाकर वह ड्योढ़ी में जाती थी। उसके मन में प्रतिक्षण नये-नये सन्देह जाग उठते थे, कहीं मोहन चला तो नहीं गया—कहीं वह सदा के लिए चला तो नहीं गया। इस ख्याल के आते ही उसका कलेजा धक-धक करने लगता।

कोई डेढ़ बजे के लगभग मोहन आता दिखाई दिया।

कुन्ती भागकर उसे लेने गई।

मोहन के पीछे एक देहाती युवती घूंघट निकाले सिकुड़ी सिमटी चली आ रही थी।

कुन्ती ठिठकी, "यह कौन?"

"यह" मोहन ने शरमाते हुए कहा, "यह मेरी पत्नी है। जाने कब, बचपन ही में मेरी शादी हो गयी थी, गौना हुआ नहीं था, गरीबी में रिश्तेदार कैसे, यही सोच मैं इन्हें बताये बिना भाग आया था, पर इन्होंने मेरा पता लगा लिया, एक दो खत इनके आये, पर लाता कैसे। अब दीवान जी ने रहने का ठिकाना दिया, तो मैंने सोचा इसे भी ले आऊं। मां-बाप ने विवाह कर दिया, इस बेचारी का क्या कसूर। जाता-जाता दीवान जी की अनुमति ले गया था। और जल्दी-जल्दी यह सब कह कर उसने कुन्ती की ओर बिना देखे अपनी पत्नी से कहा, "मालकिन खड़ी हैं नमस्कार करो।"

सकुचाती हुई युवती आगे बढ़कर कुन्ती के चरणों पर झुक गई। कुन्ती ने उसे उठाकर गले लगा लिया।

दो सूरज इकट्ठे हुए—एक का प्रकाश तेज हो गया और दूसरे की कांति मन्द पड़ गई।

दो आने की मिठाई

खान बहादुर रहमत अली कमरे में दाखिल हुए तो उनकी आँखें अंगारे उगल रही थीं। क्रोध के मारे उनका शरीर कांप रहा था और माथे पर बीसों तेवर पड़ गए थे। चीख कर उन्होंने पुकारा, "अली...ओ अली के बच्चे!"

अली उनके किशोर नौकर का नाम था। उनके लड़के मुन्नू ही की वयस का था। बरतन मलता, पानी भरता, झाड़ू देता और घर के दूसरे बीसों काम करता। इस पर भी खान बहादुर की 'कृपा-दृष्टि' उस पर बनी ही रहती।

"अली!" वे फिर चीखे।

लेकिन अली कमरे में न था। वह साथ की एक कोठरी में झाड़ू दे रहा था। पुकार सुनते ही काँपता हुआ-सा सामने आ खड़ा हुआ। खान बहादुर का रुद्र रूप देखते ही उसकी निगाहें धरती में गड़ गईं और झाड़ू फर्श पर गिर गया।

"हरामजादे!" खान बहादुर ने एक थप्पड़ उसके गाल पर जमाया। "वह फूलदान क्यों तोड़ा तूने!"

इससे पहले कि वह कुछ उत्तर देता, खान बहादुर के थप्पड़ से वह धम्म से फर्श पर गिर पड़ा। सिर उसका फट गया, पर उस ओर ध्यान दिये बिना, अपने क्रोध की रौ में, खान बहादुर उसे घसीटते हुए से ड्राइंग रूम में लाये। अंगीठी के नीचे फर्श पर शीशे का सुन्दर फूलदान टूटा पड़ा था। ईद के शुभ अवसर पर उनके एक पुराने मित्र ने विदेश से उसे भेजा था और उनके सभी मित्रों ने उसकी प्रशंसा की थी। क्रोध से उन्होंने अली

को उस पर पटक दिया। शीशे के टुकड़े गरीब के हाथों में चुभ गये। लेकिन दया के बदले दुगने क्रोध से उन्होंने उसे उठाया और गालियाँ देते हुए घर से बाहर कर दिया।

फूलदान को पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए थे। उसकी सुन्दर कला के प्रदर्शनार्थ उन्होंने ईद के अवसर पर एक पार्टी भी दे डाली थी। और अभी ईद की रात ख़त्म भी नहीं हुई कि फूलदान टूट गया। अभी तो न जाने कितने मित्रों को वे उसे दिखाना चाहते थे। जब उन्हें नौकरानी से पता चला कि शायद अली ने झाड़ू देते हुए तोड़ दिया है तो वे क्रोध से पागल हो उठे थे। नौकरानी को बुलाकर टूटे हुए गुलदान को उठा जगह साफ़ करने का आदेश देकर वे ड्राइंग रूम से बाहर निकल गये।

आँगन में उनका लड़का मुन्नू उसी फूलदान के पेंदे से ठैयूया टापू खेल रहा था। खान बहादुर को देखते ही सहसा चुप सा खड़ा रह गया।

उसके हाथ से गुलदान का पेंदा लेकर अचानक खान बहादुर ने पूछा, "तुमने तोड़ा है उसे मुन्नू?"

वह और भी सहम गया। धीरे धीरे उसका मुँह बिगड़ा और फिर वह सहसा रो पड़ा।

फूलदान वास्तव में उसी से टूट गया था।

उसे रोते देख खान बहादुर का सारा क्रोध हवा हो गया। आतुरता मे बढ कर उन्होंने उसे अपनी गोद में उठा लिया। पुचकारते हुए बोले, "रोते क्यों हो, हमीद चचा को हम लिखेंगे मुन्नू के लिए एक गुलदान और भेज दो।"

उनकी आँखों में अंगारों के बदले कुछ विचित्र तरलता आ गई, किन्तु उनके घर के बाहर बेचारा अली धूल में पड़ा रो रहा था। उसके घावों से रक्त बह रहा था और वह अपने हाथों से शीशे के नन्हें टुकड़े निकालने का विफल प्रयास कर रहा था।

"उस साले अली से कहो टें टें बन्द करे।" खानबहादुर ने ड्राइंग रूम में जाकर नौकरानी से कहा और जेब से दो आने निकाल कर उसकी ओर फेंकते हुए बोले "यह दो आने उसे दो और कहो कि हमने उसे माफ़ कर दिया, चल के काम शुरू करे। दो आने की, बोलना, मिठाई खा ले।"



डाकू

उस समय, जब सिकन्दर अपनी दुर्जय सेना लिये हुए संसार की निस्तब्ध शान्ति में हलचल मचा रहा था, जब संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक विजय-पताका फहराने की उसकी आकांक्षा, वृक्ष से गिरे हुए पत्ते को अपनी इच्छा के अनुसार उड़ानेवाली वेगवती झंझा की तरह, उसे इधर से उधर लिये फिरती थी, जब उसकी साम्राज्य-लिप्सा उन्माद की सीमा को पहुँच चुकी थी, यूनान में भी एक बहादुर डाकू के नाम का सिक्का बैठ रहा था। उसके हृदय में भी यूनान ही नहीं, सारे यूरोप में अपने विक्रम की चकाचौंध पैदा करने की उत्कट लालसा थी।

डाकू युवक था। वीर था। उसका सुगठित शरीर, लम्बी मज़बूत बाहें, चौड़ी छाती उसके बल और शौर्य की द्योतक थीं। उसकी आँखें दर्शक के शरीर में तीर की भाँति घुसकर सनसनाहट-सी पैदा कर देती थीं। बड़े-बड़े योद्धा उसके नाम से काँप जाते थे, किन्तु उसके वक्षःस्थल में एक दया-माया से भरा हृदय था। उसे केवल धनाधीशों से चिढ़ थी। उनका नाम सुनते ही उसकी भृकुटी तन जाती, उसकी आकृति क्रूर हो जाती, उसकी आँखों में रक्त के डोरे दौड़ जाते थे; परन्तु जब किसी दीन, विपन्न की करुण, दुःख-भरी कहानी उसके कानों तक पहुँचती थी तो उसका हृदय––वही हृदय जिसे उसके शत्रु पत्थर कहा करते थे––पानी हो जाता था और वही आँखें जो आग बरसाती थीं, एकदम मोम हो जातीं।

परस्पर विरोधी उपकरणों से बना हुआ उसका अस्तित्व एक पहेली––एक न खुलनेवाला रहस्य था!

एक दिन उसके साथियों ने उसे अपने अतीत के रहस्य से पर्दा हटाने को विवश कर दिया।

"पुरानी बात है", डाकू बोला "इसी देश के एक नगर में एक मज़दूर बुढ़िया और उसका बारह वर्षीय लड़का किसी न किसी तरह जीवन के दुःख-मय दिन बिता रहे थे। वे निपट निर्धन थे, किंतु आरम्भ ही से नहीं; लड़के का पिता यूनान के लिए लड़ता हुआ युद्ध में काम आया था और गृहस्थी का बोझ पत्नी के निर्बल कन्धों पर छोड़ गया था। धीरे-धीरे घर में जो जमा जत्था थी, सब समाप्त हो गई। धन का आसरा, जो संसार में सब से मज़बूत, सबसे बड़ा आसरा है, न रहा तब निर्धनता ने अपना आँचल फैलाया और उन्हें अपनी गोद में ले लिया।"

"बुढ़िया उमर से उतनी बूढ़ी न थी पर विपन्नता और निरन्तर दुःख दोनों ने मिलकर उसे वैसा बना दिया था। उसके बाल पटसन ऐसे हो गये थे, उसका शरीर किसी नदी किनारे का जर्जर वृक्ष बन गया था और अपना और अपने बच्चे का पेट पालने के लिए वह दिन-रात श्रम करती थी। जब बच्चा बड़ा हो गया तो वह भी अपनी मा का हाथ बटाने लगा। दोनों मा-बेटा पेट पालने के लिए मजदूरी करते। धनवानों के लिए रोज़ी कमाने के सहस्रों मार्ग हैं, पर निर्धनों के लिए यही एक सबसे बड़ा रास्ता है। अन्य मार्ग बन्द हो जायँ तो भी यह सदैव खुला रहता है।"

"आधी रात बीत चुकी थी पर वृद्धा अभी जाग रही थी। चिन्ताओं के भूत ने निद्रा की परी को भगा दिया था।"

"अँधेरी कोठरी के एक कोने में उसका लड़का दर्द से कराह रहा था। कई दिनों से वह रोग-ग्रस्त था, और कई दिनों से दोनो में से कोई भी काम पर न गया था। मालिक-मकान का किराया पहले ही उनके सिर था और उसके कई तगादे आ चुके थे, सुबह वह आयेगा तो वह उसे क्या जवाब देगी, यही चिन्ता उसे खाये जा रही थी। लड़का बीमार था, वह तो उठ भी न सकता था, फिर मज़दूरी करना कैसा? और घर में बर्तन तक बिक चुके थे, खाने को पैसा न था, दवा-दारू को पैसा न था, फिर किराये की कहाँ से आता! यदि मालिक-मकान ने घर से निकाल दिया तो बीमार बच्चे को लेकर कहाँ जायेगी, इन्हीं दुःखद कल्पनाओं से उसका

हृदय व्याकुल हो रहा था। पर वह सोचती— नहीं, वह इतना हृदय-हीन पाषाण नहीं हो सकता। नगर में उसके और भी तो मकान हैं, यदि उसने उनमें से एक टूटी कोठरी का किराया न भी लिया तो क्या, और इस ख्याल से उसे कुछ सान्त्वना मिलती; पर जब उसे उसकी क्रूर आँखें, उसकी तनी हुई भवें, निर्दयों ऐसा उसका रूखा व्यवहार याद आता तो वह सिहर उठती। एक दो बार उसके पपोटे भारी हुए, उसने नींद को बुलाने का प्रयास भी किया, किंतु लड़के की तकलीफ़ ने उसे सोने न दिया— सारी रात उसके सिरहाने बैठी वह उसके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करती रही।"

"दूसरे दिन अभी प्राची ने पूर्णरूप से आँख भी न खोली थी और एक अलसमयी तन्द्रा सारे संसार पर छाई हुई थी कि किसी ने ज़ोर से किवाड़ खटखटाये। बुढ़िया सहमकर उठी, उसने कुंडी खोल दी। दरवाज़ा एक बड़े धमाके के साथ खुला, इतने ज़ोर से कि छत से मिट्टी गिरने लगी।"

"बुढ़िया की डरी हुई दृष्टि ने देखा, दरवाजे में मालिक-मकान स्वयं खड़ा है। भयानक सिंह को सहमी हुई दृष्टि से देखनेवाली बीमार मृगी की तरह बुढ़िया उसे देखती रह गई। प्रातः के धुँधले प्रकाश में ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई भयानक देव अपनी गुफा के मुँह पर खड़ा अपने शिकार को अपने जबड़े में चबा डालने के लिए तैयार हो।"

"बुढ़िया ने उसके आने का कारण जान लिया। आशा की झिल-मिलाती हुई रेखा बुझ गई। वह अपने रोगी पुत्र की ओर संकेत करके रोने लगी।"

"गृह-स्वामी के हृदय पर उसकी दयनीय दशा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अभिमानी देवताओं की भाँति, जो आकाश के सुनहले महलों में बैठे हुए ग़रीबों की आहो-पुकार पर कोई ध्यान नहीं देते और वहीं बैठे-बैठे उन पर दुर्भाग्य की बिजलियाँ गिराया करते हैं, उसने भी बुढ़िया की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया और उस क्रूर स्वामी की भाँति जो

सेवक के रुग्ण, थके हुए शरीर को देखकर भी उसे काम करने पर विवश करता है, वह बुढ़िया से किराये का तगादा करने लगा।"

"बुढ़िया विवश थी, वह लड़के से लिपट कर रोने लगी। उस निष्ठुर ने उसे हाथ पकड़ कर उठाया और बाहर धक्का दे दिया।"

"बुढ़िया ने रोते हुए कहा—मेरा बच्चा रोगी है, बीमार है।"

'मैं क्या कर सकता हूँ।'

'दया करो।'

'मैं इससे अधिक दया नहीं कर सकता'—और उसने बीमार लड़के को उठाया और बेदर्दी से दरवाजे के बाहर धकेल दिया। लड़के में तो बैठने तक की शक्ति न थी। वह लड़खड़ाया और बेसुध होकर धड़ाम से फर्श पर गिर पड़ा।

"बुढ़िया तड़प उठी, उसके अन्तर की गहराइयों से एक हृदय-द्रावक चीख निकली। वह लड़के पर गिर पड़ी और फिर नहीं उठी। उसने लड़के को मृत समझ लिया था।"

"मालिक मकान ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और उनका टूटा-फूटा सामान बाहर फेंककर क्रोध और उपेक्षा-भरी दृष्टि उन पर डाल कर चलता बना।"

"जब वह चला गया तब एक दूसरे मजदूर ने जो काम पर जा रहा था, वृद्धा के शव को लड़के से अलग किया। लड़के की नाड़ी टटोली, मालूम हुआ कि वह केवल बेहोश हो गया है, मरा नहीं। उसने उसे एक पड़ोसी मज़दूर के घर पहुँचाया और स्वयं दूसरे दो एक मज़दूरों को लेकर बुढ़िया के शव को नदी में बहाने के लिए चला गया।"

"रोगी लड़के को उस मज़दूर ने अपने बच्चे की तरह पाला, उसने और उसकी पत्नी ने कितनी रातें उसके सिरहाने बैठ कर गुज़ार दीं, उसे आराम देने में आप बे-आराम हुए।"

लड़के को आराम आ गया और एक दिन जब बाल-सूर्य की भोली किरणें मज़दूर के कच्चे मकान की दीवारों से प्यार कर रही थीं, उसने देवताओं को साक्षी करके प्रतिज्ञा की कि वह अपनी स्वर्गीया मा की मौत का बदला लेगा।"

इतना कहने के बाद डाकुओं का युवक सरदार एक निमिष के लिए चुप हो गया, फिर बोला—

"यही है मेरी कहानी, जिसे सुनने के लिए तुम इतने आतुर रहा करते हो। वह बुढ़िया मेरी ही मा थी जो उस गृह-स्वामी के अत्याचार का शिकार बनी और वह अभागा, जिसे एक मज़दूर ने दया करके अपने बच्चे की भाँति पाला, मैं ही हूँ। वह मालिक-मकान अब ग़रीबों की दौलत लूटकर बड़ा रईस बना बैठा है। उसे किसी के दुःख-दर्द की कोई परवाह नहीं, वह परमात्मा के अस्तित्व को नहीं मानता, क्योंकि धन के देवता ने उस पर अपनी कृपा के दरवाज़े खोल रखे हैं।"

डाकुओं की आँखों में खून उतर आया और उनके चेहरे भयानक हो गये। सरदार ने फिर कहा—

"और अब तुम्हारा सरदार तुम से अपना प्रण पूरा करने में सहायता चाहता है, निर्धन के खून का बदला लो ताकि धन के मद में मतवालों को ग़रीबों से ऐसा अमानुषिक सलूक करने का साहस न हो।"

भाले हवा में चमके, डाकुओं ने अपने सरदार के सामने भयानक शपथें लीं और उसके लिए अपनी जान तक निछावर करने का प्रण किया।

३

आधी रात का समय था, संसार सो रहा था; पर वह रईस आलीशान महल के एक सह-मंज़िले सजे हुए कमरे में एक सुन्दर युवती को अपनी वासना की वेदी पर भेंट चढ़ाने का प्रयास कर रहा था।

वह एक ग़रीब मजदूर की लड़की थी। विषय लोलुप रईस ने उसे अपने आदमियों के हाथों पकड़ मँगाया था। पिंजरे में बंद पक्षी की भाँति वह रिहा होने के लिए छटपटा रही थी।

उस नराधम ने उसे अपनी ओर खींचा, उसकी आँखें पैशाचिक रोशनी से चमक उठीं और उसके ओठों पर नशीली मुस्कराहट नाच उठी।

वह विवश थी, अपने-आपको बन्धन से छुड़ाते हुए उसके मुँह से चीख निकल गई। उस ज़ालिम ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया और उसे बलपूर्वक अपनी भुजाओं में खींच लिया।

"मैं प्रार्थना करती हूँ, मुझे छोड़ दो।" युवती ने रोते हुए हाथ बाँध-कर कहा, और उसकी बाहों से मुक्त होने का यत्न करने लगी।

भुजा-पाश तंग होने लगा।

चीखकर युवती ने कहा—"दुःखी की आह आकाश हिला देती है।"

एक व्यङ्ग-पूर्ण नशीला अट्टहास कमरे में गूंजा। बेपरवाही से सेठ ने कहा, "हिल जाता होगा। अभी आकाश अपनी जगह क़ायम है।"

युवती ने बिलखते हुए क्रोध से उस मदांध के प्रतिक्षण तंग होनेवाले भुज-पाश से मुक्त होने की कोशिश करते हुए कहा, "ग़रीबों की आहों में महानाश होता है। पिशाच, मुझे छोड़ दे, तुझ पर देवताओं का कोप गिरेगा, तू नाश के गर्त में समा जायगा!"

उसने फिर ठहाका लगाया, "निर्धनों की आहें आकाश हिला देती हैं, उनमें महानाश होता है, हुँ!"—और सनोबर के पत्तों की भाँति काँपती हुई लड़की को उसने अपनी भुजाओं में और ज़ोर से कस लिया।"

"निर्धनों की आहों से सचमुच आकाश हिल जाता है, मूर्ख!"—किसी ने बिजली की भाँति कड़क कर कहा।

वह चौंक पड़ा, उसका पापी हृदय काँप उठा, कमरे में डाकुओं का

युवक सरदार खड़ा था। मदांध सेठ का सारा मद उतर गया और डाकू की भयानक आँखें उसे अपने शरीर के अणु-अणु में प्रवेश करती हुई प्रतीत हुईं। लेकिन सहमी हुई युवती ने उसमें देवता को देखा, उसी देवता को, गरीबों में जिसकी पूजा होती थी और जिसके नाम पर मन्दिरों में नित प्रार्थनाएँ की जाती थीं।

"उनके क्रन्दन में ईश्वर का महानाश छिपा है पिशाच!" उस भयानक युवक ने फिर कहा, "और देखो अभी आकाश हिलता है या नहीं।"

यह कहकर उसने बिगुल फूंका और उसके साथी डाकू भाले ताने हुए कमरे में घुस आये।

"सब कुछ लूट लो!"

ताले तोड़े जाने लगे, सारे भवन में कुहराम मच गया। डाकुओं ने माल बाँधा और उसे लेकर उतरने लगे।

डर से सहमा हुआ रईस एक क़ोने में पड़ा काँप रहा था, डाकुओं के सरदार को अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर उसकी रूह फ़ना हो गई। उसने हकलाते हुए कहा, "दया करो।"

सरदार की आँखों से आग निकल रही थी, उसे अपनी ओर खींचते हुए उसने कहा—"पहचान ले, दुर्बल और रोगी लड़का सबल और स्वस्थ होकर अपनी मा की हत्या का बदला लेता है।"

यह कहते हुए उसने काँपते हुए सेठ को अपनी बलिष्ठ भुजाओं पर उठाया।

"दया...करो"—भय से काँपते हुए सेठ ने कहा।

"बस मैं इससे अधिक दया नहीं कर सकता, किसी दिन तुमने मुझे बेदर्दी के साथ घर के बाहर धक्का दिया था, आज वही धक्का तुम्हें मिलता है।" और यह कहते हुए सरदार ने खिड़की से उसे नीचे फेंक दिया।

एक चीख़—और अत्याचारी का ख़ात्मा हो गया।

सरदार ने उसी कमन्द द्वारा जिससे वह इस तिमंज़िले मकान पर चढ़ा था, युवती को नीचे उतारा, फिर स्वयं उतरा और कुछ दूर जाकर अशर्फ़ियों का तोड़ा लड़की के हाथ में देकर उसे घर जाने को कहा और चल पड़ा।

उसके साथी डाकू उसके साथ हो लिये, लड़की कुछ क्षण तक हैरान-सी अँधेरे में गुम होती हुई उन सूरतों को देखती रही और फिर स्वयं रात की तारीकी में विलीन हो गई।

चाँदनी रात थी और नदी का किनारा!

चाँद की शुभ्र किरणें धवल श्वेत लहरों पर तैर रही थीं और चाँद का प्रतिबिम्ब मानो प्रत्येक लहर के साथ तैर कर उसे पराजित करने का प्रयास कर रहा था।

नदी के किनारे हरी-हरी घास का मैदान था। और वहाँ मजदूरों की भीड़-सी लगी हुई थी। गरीब मजदूर प्रसन्न थे। कोई तान लगा रहा था, कोई गीत गा रहा था, आह्लाद का नृत्य हो रहा था और मज़दूरों के नंगे पाँव घास पर एक हलका शोर पैदा कर रहे थे। आज उनकी कठिनाइयों को दूर करनेवाला देवताओं का दूत आनेवाला था और उनकी खुशी का वार-पार न था।

धीरे-धीरे वहाँ मेला-सा लग गया, मालूम होता था जैसे नगर भर के मज़दूर और विपन्न वहाँ पहुँच गये हों।

अचानक एक कोलाहल मचा और फिर निस्तब्धता छा गई। डाकुओं का सरदार अपने साहसी साथियों के साथ मज़दूरों को मोहरें बाँटने लगा। सबसे पहिले अपाहिजों की बारी आई, फिर बच्चों की, फिर स्त्रियों की। अब केवल पुरुष ही पुरुष रह गये थे। स्त्रियाँ और बच्चे अपना-अपना भाग लेकर अपने घरों को चले गये।

अभी तक आधे मज़दूरों में भी मोहरें न बँटी थीं कि घोड़ों के टापों

की ध्वनि सुनाई दी। मज़दूरों में हुल्लड़ मच गया। सेना के दो अश्वारोही दस्ते खबर पाते ही डाकुओं को पकड़ने के लिए आ रहे थे।

सब ओर शोर मच गया। कोई इधर भागा, कोई उधर। तभी एक ऊँची, कड़कती, उत्साह भरी आवाज़ फ़िज़ा में गूंज उठी—

"ज़माने भर से ठुकराये हुए लोगो, जहाँ हो वहीं डट जाओ। तुम्हारी माओं, बेटियों, बहनों पर जो अत्याचार किये जाते हैं, उनका बदला लो। घर में छिपकर स्वाभिमान को इस निकृष्ट जीवन पर न्योछावर न करो। मौत तुम्हारे दोनों ओर है। यदि यहाँ से भागकर तुमने जान बचा भी ली तो वह जीवन मौत से भी बुरा होगा, और यदि यहाँ लड़-कर तुम मर भी गये तो वह मौत जीवन से सहस्र गुना अच्छी होगी!"

सबने देखा, पचास डाकुओं का समूह अपने नेता के पीछे कट-मरने को तैयार है।

डाकुओं ने भाले हवा में बुलन्द किये। उनकी तलवारें दूसरों ने ले लीं, निहत्थे पीछे हट गये। और एक सौ उत्साही लोगों का यह दल सिपाहियों का स्वागत करने को आगे बढ़ा।

मुक़ाबिला हुआ, भालों से भाले टकराये, तलवारों से तलवारें लड़ीं। अभी कुछ देर पहले जहाँ उल्लास का खेल हो रहा था, वहाँ ख़ून का खेल होने लगा। सिपाहियों को ऐसे प्रबल मुक़ाबिले की आशंका नथी, पराजित होकर वे भाग खड़े हुए।

घास पर सिपाहियों, घोड़ों, मज़दूरों और कुछ डाकुओं की लाशें तड़प रही थीं, और साँझ के मलिन आकाश पर धारियोंकी सूरत में बिखर जाने-वाली लालिमा की तरह लाल-लाल रक्त की धारियाँ हरी घास पर फैल गईं।

एक असाधारण कोलाहल से सैनिक कुतूहल-वश अपनी-अपनी रावटियों से बाहर आ खड़े हुए। सब इस वीर डाकू को एक नज़र देखने के लिए उत्सुक थे।

लगभग तीस सैनिकों के घेरे में डाकुओं का युवा सरदार हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ा हुआ सिकन्दर के सामने पेश करने के लिए ले जाया जा रहा था। खूबसूरत, दराज़क़द, बलिष्ठ और निडर! सैनिक निर्निमेष उसकी ओर देखते रह गये। वे उसे एक भयानक नृशंस व्यक्ति समझते थे, किन्तु उनकी कल्पना के विपरीत वह एक विलक्षण प्रकार का सुन्दर युवक था। एक निमिष के लिए सैनिकों के दिल में इस निर्भीक, निडर युवक के लिए सहानुभूति चमक उठी, पर जब स्मृति ने उन्हें उसके कारनामे सुनाये जो हत्याओं, डाकों और लूट से भरे हुए थे तो यह सहानुभूति उपेक्षा में बदल गई।

"क्या तुम वही हो—यूनान के प्रसिद्ध डाकू जिसके वीभत्स कारनामों के बारे में मैं आज तक सुनता आया हूँ?"—सिकन्दर ने डाकू को ओर उपेक्षा भरी दृष्टि से देखते हुए कहा।

सरदार ने अपनी गर्दन ऊँची की।

दोनों आमने-सामने खड़े थे। दोनों युवक, दोनों सुन्दर, गर्वीले, लम्बे और बलिष्ठ! अन्तर केवल इतना था कि एक सम्राट था दूसरा कैदी, एक सिंह था—वन के पशुओं का स्वतंत्र राजा, दूसरा भी सिंह था पर पिंजरे में बन्द! फिर भी तेवर वही थे, शान वही थी, साहस वही था! निर्भीकता से उसने कहा—"हाँ, मैं यूनान का वही सिपाही हूँ, जिस पर यूनान की जनता को अभिमान है।"

"सिपाही! डाकू, लुटेरे और चोर!" सिकन्दर ने उपेक्षा से कहा, "तुम कहते हो, यूनान को तुम पर गर्व है। मैं कहता हूँ, सब यूनान तुमसे घृणा करता है। तुम उसके निवासियों के लिए एक आफ़त हो, उसकी शान्त जनता के लिए मुसीबत! मैं तुम्हारी वीरता की प्रशंसा करता हूँ, किन्तु तुम्हारे अत्याचारों से घृणा और तुम्हें दंड का भागी ठहराता हूँ।

"दण्ड का भागी ठहराते हो मुझे?"—युवा डाकू हँसा, "तुम ठहरा

सकते हो, सम्राट् हो न तुम, महान् हो न तुम, पर बता सकते हो, मैंने कौन-सा अपराध किया है ?"

"अपराध, एक अपराध हो तो बताऊँ, तुमने अनेक अपराध किये हैं—अनेक !"

"उदाहरण ?"

"तुमने राज-सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति फैलाई, प्रजा के आराम में खलल डाला, निरपराध लोगों पर अत्याचार किये--तुम्हारा सारा जीवन अपने भाइयों का धन-दौलत, इज्ज़त और मान लूटने में बीता है—और पूछोगे अपने अपराध तुम !"

डाकू के ओंठ विद्रूप से कुंचित हो उठे और फिर उन पर एक व्यंग्य-मयी मुस्कान फैल गई। "क्या पूछ सकता हूँ सिकन्दर" वह बोला "तुम्हारा कैदी होते हुए क्या पूछ सकता हूँ ! पूछता और तुम्हारे हर अभियोग का जवाब देता, यदि मैं स्वतन्त्र होता, अब तो जो तुम कहोगे मान लूँगा, जो दोष लगाओगे स्वीकार कर लूंगा, जो दण्ड दोगे सह जाऊँगा। मैं तुम्हारे सब अभियोगों का उत्तर देता, लेकिन कैदी की हैसियत से नहीं, बल्कि एक स्वतन्त्र व्यक्ति की हैसियत से, जिसकी हर बात तुम्हें सुननी होती।"

"हाँ, शौक से उत्तर दो, पूछो जो तुम पूछना चाहते हो, सिकन्दर उनमें से नहीं जो किसी की साफ़गोई को सुनना पसन्द नहीं करते और अपने अधिकार का अनुचित लाभ उठाते हैं। तुम आज़ादी से पूछ सकते हो, आज़ादी से मेरे अभियोगों का उत्तर दे सकते हो।"

"तो मैं उन सब अभियोगों से, जिसे तुम अपराध के नाम से पुकारते हो, इनकार करता हूँ। मैंने डाके, डाले ठीक, मैंने सुख और शान्ति की गोद में सोते हुए धनाधीशों को लूटा, सच; मैंने जालिमों को उनके जुल्म की सज़ा दी, बजा; पर मैं फिर भी अपराधी नहीं, और यदि मैं अपराधी भी हूँ, तो भी तुम मुझे दण्ड नहीं दे सकते।"

'तुम' पर डाकू ने ज़ोर दिया। तुनककर सिकन्दर ने कहा—"कैसे ?"

डाकू बोला, "तुम कहते हो कि मेरा सारा जीवन अपने भाइयों का धन-दौलत, इज्ज़त, और मान लूटने में बीता है, तुम बता सकते हो तुम्हारा जीवन कैसे बीता है ?"

"कैसे बीता है?" सिकन्दर ने गर्व से सिर उठाकर कहा, "एक सच्चे योद्धा की भाँति। जाओ, ख्याति से पूछो और वह बता देगी कि मैं योद्धाओं में सबसे वीर, सम्राटों में सबसे महान् और विजेताओं में सबसे शक्तिशाली हूँ।"

"तो क्या ख्याति मेरी बाबत भी यही नहीं कहती, पूछ देखो उसे और वह डंके की चोट बता देगी कि आज तक संसार में ऐसे बलवान् और सुसंगठित दल का मुझ जैसा निर्भीक सरदार नहीं हुआ, क्या किसी डाकू ने मेरी तरह योद्धाओं का-सा जीवन व्यतीत किया है ? अपने सैनिकों से पूछो और वे तुम्हें बता देंगे और......किन्तु ये बातें वृथा हैं। मैं अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू नहीं बनना चाहता। यूनान का बच्चा-बच्चा मेरे नाम से अभिज्ञ है, ख्याति मेरे पाँव चूमती है। तुम्हें स्वयं मालूम है कि मैं किस मुसीबत से गिरफ़्तार किया गया हूँ।"

"ठीक ! किन्तु तुम आखिर हो क्या ? डाकुओं के एक नृशंस सरदार, अत्याचारी, बेदर्द और लुटेरे !"

"और विजयी क्या है, सिकन्दर !" डाकू ने उसी उपेक्षा से जवाब दिया, "वह भी एक डाकुओं के सरदार से, एक नृशंस डाकू से बड़ा दर्जा नहीं रखता। तुम अपने-आपको विजेताओं में सबसे शक्तिशाली कहते हो, लेकिन बताओ क्या तुम विषैले पवन की भाँति व्यापार और शान्ति के मीठे फलों को जलाते, संसार के आराम में ख़लल डालते, उत्पात मचाते, लूटते-मारते, नष्ट-भ्रष्ट करते, संसार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक आँधी की भाँति नहीं उमड़े ? क्या तुमने उन देशों को, उन राज्यों को जिन्होंने

तुम्हारी सत्ता को नहीं माना, या उसका विरोध किया, जड़ से उखाड़कर नहीं फेंका और उनकी निरपराध प्रजा पर अत्याचार नहीं तोड़े ?"

"सत्य—किन्तु यदि मैंने विजेताओं की भाँति किसी प्रदेश को छीना है तो सम्राटों की भाँति उसे दान भी दे दिया है। मैंने साम्राज्य बिगाड़े तो साम्राज्य बनाये भी। राजधानियों का नाश किया, लेकिन सृजन भी। मैंने संसार में यदि व्यापार को धक्का पहुँचाया, तो व्यापार, कला और कौशल की एक दुनिया भी आबाद की है।"

"और मैंने भी जितना अधिक अमीरों को लूटा, उससे अधिक ग़रीबों में बाँट दिया। मैंने धनाधीश बिगाड़े, धनाधीश बनाये, जो पहले धनिकों की भाँति अत्याचारी और ज़ालिम न थे। अत्याचारियों को उनके अत्याचार का दंड दिया और अपनी भुजाएँ निर्बलों और निर्धनों के लिए फैला दीं। उस कला-कौशल के बारे में जिसकी तुम डींग हाँकते हो, मैं कुछ नहीं जानता, पर इतना समझता हूँ कि जो हमने उजाड़ा है उसे फिर नहीं बसा सकते।"

सिकन्दर का सिर झुक गया और वह गहरे सोच में निमग्न था।

डाकू ने कहा, "और तुम एक बड़े डाकू हो और मैं छोटा। तुम्हारी भुजाएँ संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक फैली हैं और मैं केवल यूनान पर ही उड़ सका हूँ।"

सिकन्दर ने सिर उठाया जैसे किसी ने उसे स्वप्न से जगा दिया हो, या किसी ने उसकी निस्तब्धता के तार तोड़ डाले हों। सैनिकों को आज्ञा दी, "इस वीर को छोड़ दो और इसके साथियों को भी रिहा कर दो।"

सिपाही उसे लेकर चले गये। सिकन्दर ने एक दीर्घ-निश्वास छोड़ा, 'आह! क्या हम एक दूसरे के इतने निकट हैं ?" उसने अपने आप से कहा, "इतना-सा अन्तर—सिकन्दर महान्—सिकन्दर डाकू !"

और चुपचाप वह अपने खेमें में चला गया।

राजकुमार

एक ही महीने के अन्दर कुमुदिनी को इस बा त का भली भाँति पता चल गया कि यदि राजसभा में किसी पर उसके जाने का प्रभाव नहीं पड़ता तो वह है राजकुमार! उसने देखा कि उस समय भी जब सारी सभा उसकी मधुर स्वर लहरी की तरंगों में डूब उतराया करती है, राजकुमार जैसे सूखे तट पर खड़ा तकता रहता है। उस पर उसकी कला का कोई प्रभाव नहीं होता। चुपचाप शांत और गम्भीर अपनी जगह पर वह स्थिर बैठा रहता है। यही नहीं, प्रायः वह उसके गान को अधूरा ही छोड़कर उठ भी जाता है।

राजा ने उसे राजनर्तकी बना लिया था। इस एक महीने में जब कभी वह सभा में गाने के लिए आती थी, आसपास की रियासतों के राजकुमार उसे एक नज़र देखने के लिए उमड़ पड़ते थे। उसकी एक एक तान पर झूम उठते थे। उसके मधुराधरों से निकले स्वरामृत को पीते न अघाते। लेकिन राजकुमार पर उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ता। अमृतमयी भागीरथी पास में बहती रहती थी, लोग दूर दूर से आकर उसमें गोते लगाते थे पर उसके पास रहने वाला कभी भूल कर भी एक चुल्लू पानी न लेता था।

जब कभी राजकुमार राग रंग की सभा को कुमुदिनी के गाने के बीच ही छोड़कर चल देता तो, क्रोध से नर्तकी का मुख आरक्त हो उठता! किंतु फिर फिर उस पर सफेदी छा जाती। उसका पराजित स्त्रीत्व अभिमान से सर उठाता पर क्षण भर में फिर बैठ जाता जैसे चोट लगने पर नाग फन उठाकर फुफकार उठता है, लेकिन फिर चोट की पीड़ा से व्याकुल होकर गिर जाता है!

लोग उसके मधुर कंठ की प्रशंसा करते, उसकी हर भाव-भंगिमा पर बलि-बलि जाते पर कुमुदिनी को यह सब ज़रा भी न भाता था। अमृत की वांछा रखने वाले को यदि सागर का खारा पानी मिले तो वह उससे मुँह न फेर ले तो और क्या करे।

ईश्वर जाने राजकुमार का हृदय किन तत्वों से बना था। उसका सुकुमार शरीर और भरा पुरा यौवन उसे तनिक भी अपनी ओर न खींचता। वह उसे कभी पुरस्कार न देता था। उसकी तानों पर बेसुध होकर कभी उसके मुंह से 'वाह वा' न निकली थी। कुमुदिनी अपनी समस्त शक्ति से गाकर उसे रिझाने की चेष्टा करती, उसकी आँखों में आँखें डाल देती, लेकिन उन आँखों में मृत्यु की सी अटल शाँति और गहराई होती थी और ठुकराये हुए व्यक्ति की तरह कुमुदिनी की आँखें नीचे झुक जाती थीं।

लेकिन उसने साहस न छोड़ा था। एक बार वह राजकुमार के अभिमान को चकनाचूर कर देना चाहती थी। एक बार उसके मुंह से सुनना चाहती थी, कुमुदिनी तुम कितना अच्छा गाती हो !'

पहली बार जब राजकुमार ने उसे आत्म-विस्मृति-पूर्ण दृष्टि से देखा था तो उसे पूर्ण विश्वास था कि दूसरे दिन वह उसके द्वार पर होगा; उससे किसी न किसी प्रकार मिलने। का प्रयत्न करेगा। किन्तु यह सब उसकी कल्पना तक सीमित रहा। राजकुमार उस सरोवर के जल की तरह था जो बाहर से गहरा न दिखाई देता था, पर तैरने वाला उसकी अथाह गहराइयों में खो कर रह जाता है। यद्यपि उसका जीवन विचित्र रहस्यमयता के आवरण में ढँका था, राज-सभा की दुनियाँ से वह बिल्कुल अगल रहता था। कुमुदिनी को सब कहीं आने की स्वतंत्रता थी, पर वह कुमार के महल की ओर जाने का साहस न कर पाती थी।

राजकुमार को इस राग-रंग से घृणा थी। कुमुदिनी को देखकर वह

दृष्टि झुका लेता था अथवा आँखों को बिना झपकाये उसके पास से निकल जाता था।

पहले कुमुदिनी सोचती—राजकुमार को गाने की समझ नहीं, पर एक समारोह पर दक्षिण के एक वृद्ध गायक का संगीत उसने जैसे सुना और जैसे उसकी प्रशंसा की, उससे कुमुदिनी का यह भ्रम मिट गया और वह समझ गई कि राजकुमार की इस उपेक्षा के पीछे उसकी इच्छा काम करती है। वह अनज्ञानी नहीं।

जितना ही वह राजकुमार के बारे में सोचती, उसका अहम् उस पर विजय प्राप्त करने के लिए आकुल हो उठता। पर जब राजकुमार सामने आ जाता तो उसकी एक न चलती थी। अपने एक भी अस्त्र को वह काम में न ला सकती।

गर्मियों की सन्ध्या थी। कुमुदिनी अपनी बांदी के साथ वाटिका की सैर कर रही थी। उसकी गाड़ी एक कोने में खड़ी थी और वह राजकुमार के ध्यान में खोई वाटिका की वीथियों में टहल रही थी। शायद यह सच नहीं था कि वह राजकुमार को पराजित करना भर चाहती थी। वह उस-पर जादू भरी मोहनी डालना चाहती थी कि एक बार राजकुमार इतना आत्म-विस्मृत हो जाय कि अपनी उँगलियों से उसका चिबुक उठाकर कह दे "कुमुमिनी तुम बहुत अच्छा गाती हो!" वह उसके अभिमान को तोड़ना चाहती थी। उसे इस बात की परवा न थी कि वह किस तरफ बही जा रही है। कभी कभी उसे ऐसा लगता, जैसे वह भटक गई है और राजकुमार से प्रेम करने लगी है। लेकिन जैसे सोने वाला क्षण भर को चौंक कर फिर सो जाय, वही दशा कुमुदिनी की थी। नये कवियों की भांति जो उन लोगों की प्रशंसा पाने के इच्छुक होते हैं जो सब की प्रशंसा नहीं करते, वह भी राजकुमार से अपने गाने की, अपने सौन्दर्य की प्रशंसा चाहती थी और इस प्रयत्न में वह अपने प्राण तक होम कर देने को तैयार थी।

दायीं ओर बाग के माली की झोंपड़ी थी। बेलों से घिरी हुई झोंपड़ी में नवयुवती मालिन चारपाई पर बैठी थी। माली ने आकर उसकी आंखें बन्द कर लीं। मालिन ने बनावटी झुंझलाहट से उसके हाथों को झटक दिया। माली रूठ गया और थोड़ी देर के मान-मनौवल के बाद फिर दोनों हार गून्धने लगे। दक्खिनी समीर का एक ठंडा झोंका आया और कुमुदिनी ने एक ठंडी साँस ली। एक क्षण के लिए वह कल्पना में मालिन बन गई और राजकुमार माली। लेकिन दूसरे ही क्षण उसका स्वप्न टूट गया। झोंपड़ी का आकर्षण जाता रहा। हवा गला घोंटने लगी। हरे-भरे पेड़ आग सी उगलने लगे और कुमुदिनी व्याकुल हो उठी।

बांदी ने उसे दो-एक बार बुलाने का प्रयास किया लेकिन उसे उसने चुप करा दिया। पश्चिम की ओरसे कुछ बादल उठने लगे और दक्खिनी पवन के आगे आगे चलती कुमुदिनी राजकुमार की वाटिका के निकट पहुँच गई। वहाँ कोई दरबान अथवा नौकर न था। क्षण भर के लिए कुमुदिनी ठिठकी और फिर अन्दर चली गई। बांदी बाहर ही खड़ी रह गई।

सामने कुमार का सीधा साधा मकान था। राजकुमार के उद्यान की सैर करते हुए कुमुदिनी का रोम रोम पुलकित हो उठा। पत्ते पत्ते में उसको राजकुमार की मुसकराती चंचल और गम्भीर अथाह आंखें दिखाई देती थीं। कुमुदिनी को उन आँखों की गम्भीरता पर क्रोध आता था और उनकी चंचलता पर प्यार। पत्तों से खेलती, फूलों को चूमती कुमुदिनी राजकुमार के भवन की ओर बढ़ी।

राजकुमार वहीं एक कुंज के नीचे बैठा हुआ था। वही विस्मृति, वही गम्भीरता और चंचलता के बीच में दबी-दबी सी मुस्कान जो उसने पहले रोज देखी थी। उसने राजकुमार से अपने प्रति उपेक्षा का कारण पूछा। उसके बर्ताव की शिकायत की। राजकमार के ओठों पर मुस्कान स्पष्ट होकर नाच उठी और बोला "कुमुमिनी, तुमसे किसने कहा कि मैं तुम्हारा गाना पसंद नहीं करता। तुम तो बहुत अच्छा गाती हो।"

कुमुदिनी को लगा कि उसने राजकुमार को नीचा दिखा दिया है। उसने गर्व से अपना सिर ऊपर उठाया। उसका शरीर पसीने से शराबोर हो उठा—वह तो सपना देख रही थी, कल्पना के जगत में कितनी रंगीनी और सुख है, पर यथार्थ जगत में कितनी विरसता और दुख! उसने कल्पना में राजकुमार का अभिमान तोड़ दिया था, पर यह सत्य से कितना दूर था। उसे अपनी आत्म-विस्मृति पर स्वयं हँसी आ गई। उसने आँखें उठाकर देखा—राजकुमार फिर अपने अध्ययन में व्यस्त हो गया है।

कुमुदिनी के जी में आया कि राजकुमार पर ऐसा जादू डाले, अपनी बातों के जाल में उसे ऐसा उलझा ले कि उसकी सब पवित्रता, अभिमान, उसकी मीठी बातों के बहाव में बह जाय। फिर विचार उठा कि उससे दूर भाग जाये। लेकिन स्त्री-हठ ने पुरुष हठ को चुनौती देने का निश्चय कर लिया। मोम ने लोहा बनने की कोशिश करने की ठानी।

सहसा राजकुमार ने उसकी ओर देखा, मुस्कराया और किताब बन्द करके उसके पास आ गया। निमिष भर को कुमुदिनी का मस्तिष्क जड़ हो गया, सोच-समझ सकने की सारी शक्ति जवाब दे गई। उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं।

"कुमुदिनी देवि!"

"नर्तकी और देवी!" कुमुदिनी का शरीर सिहिर उठा। आज पहली बार उसने राजकुमार का मधुर स्वर सुना था।

राजकुमार ने आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रख दिया। शायद वह अपने संयम की परीक्षा ले रहा था।

प्रायः राजकुमार से कहीं अधिक सुन्दर राजकुमारों ने उसके गले में अपनी बाहों के हार डाले थे, पर उसने अपने शरीर में कभी ऐसा पुलक महसूस न किया था। लेकिन आज राजकुमार के स्पर्श मात्र से उसके

शरीर में खुशी की एक लहर सी दौड़ गई। सुख की तीव्र अनुभूति से उसकी आँखें अपने आप बन्द हो गईं।

"देवि कुमुदिनी !"

राजकुमार ने फिर उसका नाम लिया। कुमुदिनी का सुख-स्वप्न टूट गया। उसने आँखें ऊपर उठाईं और उलाहना भरे स्वर में बोली,

"राजकुमार !"

उसका हृदय बैठने सा लगा। राजकुमार की आँखों में समुद्र की गहराई और ओस-कणों की सी पवित्रता थी।

दोनों कुंज में चले आये। राजकुमार अपनी जगह पर बैठ गया।

"बैठ जाओ देवि !"

मग्न-मुग्धा सी वह धरती ही पर बैठ गई।

"आसन ले लो।"

कुमुदिनी ने सिर उठाया, उसके ओठों पर मुस्कराहट फैल गई। आँखों में दुनिया भर की शोखी सिमिट आई। सिर को दायीं ओर झुकाकर उसने अधखुली दृष्टि से राजकुमार को देखा और बोली "मैं यहीं ठीक हूँ।"

उसने राजकुमार की आँखों में आँखें डाल दीं।

लेकिन राजकुमार की शान्त आँखों ने उसकी आँखों को अधिक देर अपने पर टिकने न दिया। क्षण भर को आग पानी से लिपट गई, पर पानी को जलाने के बदले वह खुद ही बुझ गई। कितना पत्थर-दिल था राजकुमार !

"कैसे आई हो देवि !"

कुमुदिनी ने सिर उठाया, "अपने प्रश्नों का उत्तर पाने।"

राजकुमार मुस्कराया, "कैसा प्रश्न ?"

"तुम मेरे संगीत में दिलचस्पी नहीं लेते कुमार !" कुमुकिनी की आँखों में आँसू छलक उठे।

"देवि" राजकुमार ने कुछ प्रभावित होकर कहा, "मैं आध्यात्मिक जगत में खोया रहता हूँ। भौतिक जगत में मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं। वर्षों के अध्ययन ने मुझ में राग-रंग के प्रति—जैसा कि राग-रंग दरबार में होता है—तीव्र घृणा उत्पन्न कर दी है।" राजकुकार ने क्षणभर रुककर अपने कुटिया-नुमा-महल की ओर संकेत किया "कुमुदिनी (आत्मविस्मृति में वह 'देवी' शब्द छोड़ गया) ये सब कमरे आध्यात्मिक ग्रंथों से भरे पड़े हैं। इन्होंने मुझे दुनिया से बहुत ऊपर उठा दिया है। तुम्हारे गानों को सुनकर भी मनुष्य कुछ क्षणों के लिए दुनिया से ऊपर उठ जाता है, लेकिन उस राग के खत्म होने पर वह फिर अपने को इसी दुनिया में पाता है। यही कारण है तुम्हारा संगीत मुझे अपनी दुनिया से नहीं खींच पाता।"

कुमुदिनी ने राजकुमार के घुटनों पर हाथ रखा।

"राजकुमार !"

"कुमुदिनी" देवि का शब्द कुमार भूल चुका था।

"मुझे भी उस आध्यात्मिक जगत में ले चलो।" उसकी आँखों में शरारत नाचने लगी। "मैं इस नीच जीवन को छोड़ दूंगी। यह विष भरे शृंगार और वस्त्राभूषण आग में जला दूंगी।" उसने अपने आभूषणों को उतार उतार कर फेंकना शुरू किया। "मैं कसम खाती हूँ", उसने अपनी आखिरी अंगूठी फेंकते हुए कहा "कि मैं इस नरक से निकल कर ही रहूंगी। ईश्वर के लिए मुझे सही रास्ता दिखा दो !"

राजकुमार मुग्ध भाव से एक टक उसके मुख पर दृष्टि जमाये था। अब जब उसने आभूषण उतार कर फेंक दिये थे, वह पहले से कहीं अधिक सुन्दर लग रही थी। उसके बालों की कुछ बिखरी लटें उसके मुख पर पड़ गई थीं। राजकुमार ने सोचा इस तरह इसे देखकर कौन कह सकता है कि यह नर्तकी होगी। पर दूसरे क्षण ही राजकुमार ने अपने मन में उठते इस तरह के विचारों को बलपूर्वक दबा दिया।

"राजकुमार, राजकुमार, मुझे ज्ञान-दान दो, मुक्ति का रास्ता दिखाओ।"

"दिखाऊँगा।" राजकुमार बोल उठा, लेकिन फिर कुछ सोच कर गम्भीरता से बोला "पर यह कठिन काम है। एक दिन में दुनिया के सुखों का त्याग सम्भव नहीं है।"

कुमुदिनी बोली, "मैं रोज़ आया करूंगी कुमार और तुम्हारे साथ इस नयी दुनिया की सैर किया करूंगी। तुम मुझे ऐसे उपदेश दो जिससे मेरे समस्त पाप धुल जायँ, जिस तरह वर्षा से बाग़ का पत्ता-पत्ता धुल जाता है।" उसने राजकुमार के घुटनों पर सर रख दिया और गुनगुनाने लगी।

धीरे-धीरे आवाज़ ऊँची होती गई। उसकी आँखों से सचमुच आँसू निकलने लगे। और राग खत्म होते ही वह राजकुमार के पावों पर गिर पड़ी।

राजकुमार ने एक लम्बी साँस ली। उसने कुमुदिनी को धरती से उठा कर आसन पर लिटा दिया और किताब से उसे हवा करने लगा। क्षण भर बाद कुमुदिनी ने आँखें खोलीं। उसके नेत्रों की शोखी पर भय का पर्दा सा पड़ा था। राजकुमार उसे न देख सका। इसके बाद कुमुदिनी शान्त भाव से उठी। राजकुमार के पास उपदेश लेने आने का वादा किया और उसे प्रणाम करके चल दी।

दरवाज़े पर बांदी ने देखा कुमुदिनी के ओठों पर विजय भरी मुस्कान थिरक रही थी। उसका मुख खिला पड़ता था।

कुमुदिनी चली गई। राजकुमार फिर पढ़ने लगा। लेकिन उसका मन न लगा। किताब के प्रत्येक शब्द में उसे कुमुदिनी की थिरकती हुई छवि दिखाई देने लगी। उसके कानों में वही मधुर स्वर लहरी गूंजती रही।

वह उठा और अपने कमरे में आया। एक के बाद दूसरी कई किताबें उठाईं, लेकिन किसी में उसका मन न लगा। उद्विग्न हो वह कमरे में चक्कर काटने लगा। गौतम बुद्ध के उपदेशों का संग्रह उठाया और निर्वाण का प्रकरण पढ़ने की चेष्टा की। इस प्रकरण में उसके लिए सदैव बड़ा आकर्षण रहता था। इसके पढ़ने से सदैव उसे एक आध्यात्मिक शान्ति मिलती थी और सांसारिक भोग विलास से वितृष्णा उत्पन्न हो जाती थी। पर आज यह प्रयत्न भी बेकार रहा। उसका मन ही उसमें न लगा। उसने आवेश में किताब पटक दी। क्या इसी लिए उसने अपने जीवन के इतने वर्ष व्यर्थ खोये थे। एक के बाद एक पुस्तक उठाकर वह धरती पर पटकने लगा। फिर उनके ढेर में दियासलाई लगा दी। वर्षों की एकत्र की हुई पुस्तकें जल रही थीं। राजकुमार ने उपेक्षा भरी दृष्टि से उन्हें देखा और बाहर निकल गया।

दूसरे दिन कुमुदिनी अपनी सरलतम भूषा में राजकुमार के महल के पास पहुँची तो उसने देखा महल जल रहा है और राजकुमार का कहीं पता नहीं। वह घने वनों में खो चुका था।



मानव या दानव

शाम के छः बजे थे। सारा पंडाल रंग-बिरंगी चमकदार बिजली की रोशनियों से जगमगा रहा था। "अखिल भारतीय सांस्कृतिक विश्वविद्यालय" का उद्‌घाटन समारोह था। नन्दी स्वामी ने अपने भगीरथ प्रयत्न से वह कर दिखाया था जिसका लोगों को स्वप्न में भी गुमान न था। बड़े-बड़े सुधारकों, शिक्षा-विशेषज्ञों के मस्तिष्क में जो कल्पना एक धुँधले से रूप में वर्तमान थी, उसे उन्होंने साकार कर दिया था। एक ऐसा विश्वविद्यालय जो छात्रों को समस्त वादों और संकीर्ण धर्मान्धता से परे रखकर सचमुच भारतीय संस्कृति के रंग मे रंग दे, जिससे वे दुनिया के सामने भारतीय संस्कृति का आदर्श रख सकें और भारत का मस्तिष्क ऊँचा कर सकें—इस महत् कार्य का सेहरा एक लंगोट लगाने वाले सन्यासी के सर बँधे, लोगों की उत्सुकता उचित ही थी।

आर्य-समाजी, सनातन-धर्मी, ब्रह्म-समाजी, जैनी, सिक्ख, अछूत सभी तरह के लोग इस समारोह में सम्मिलित हुए थे। भारत भर की समस्त संस्थाओं ने अपने प्रतिनिधि भेजे थे। भीड़ इतनी थी कि पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट स्वयं सिपाहियों के साथ आये हुए थे।

बड़े बड़े विद्वान्, नेता, सुधारक और शिक्षा-शास्त्रियों ने मुक्त हृदय से स्वामी जी को बधाई दी थी और उनके महान् प्रयत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। उन्हें अपनी श्रद्धांजलियाँ भेंट की थीं। अब अन्त में स्वामी जी को बोलना था। आखिर वे उठे, सारा पंडाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा, पर दूसरे ही क्षण एकदम सन्नाटा छा गया। स्वामी जी का गहर गंभीर स्वर पंडाल में गूंज उठा।

"सज्जनों,

संसार मानवों की बस्ती है। मानवों की—जो गुण-दोषों के पुतले हैं। जो मानव हैं, देवता नहीं। कभी कभी किसी मानव में गुण ऐसे उभर आते हैं कि वह देवत्व को पा लेता है और कभी-कभी किसी के दोष इस प्रकार उजागर हो जाते हैं कि वह दानव बन जाता है। नन्दलाल इन्हीं दूसरी तरह के दानव रूपी मानवों में से एक था।"

पंडाल का सन्नाटा और भी गहरा हो गया।

"आज से बीस वर्ष पहले की बात है जब नन्दलाल ने मैट्रिक पास किया था। वह ग़रीब मां-बाप का बेटा था और कालेज का ख़र्च उठाना उनके बस की बात न थी। उसका दिल चाहता था कि कालेज में पढ़े, पर ग़रीबी उसके मार्ग की दीवार बन जाती थी। वह ऊपर उड़ना चाहता था, पर गरीबी उसे नीचे ढकेल देती थी।

आखिर में उसने एक स्टेशन मास्टर से तार का काम सीखना शुरू किया। जी लगाकर सीखा और शीघ्र वह तार की टिकटिक में संदेश लेना-देना सीख गया। तब उसने परीक्षा दी और पास हो गया। माँ-बाप ने बड़ी खुशियाँ मनाईं जैसे उनका लड़का डिप्टी कमिश्नर हो गया हो। मुहल्ले वालों ने उसे इस तरह देखा जैसे वह आई० सी० एस० के इमतिहान में प्रथम आया हो।

कई मुहल्ले वालों का हृदय ईर्ष्या से जल उठा, पर ऊपर से उसे सब बधाई देते रहे। माँ-बाप ने मुहल्ले में बताशे बांटे, उनकी खुशी का ठिकाना न था। सन्तान-हीन मां-बाप को लड़का पाकर उतनी खुशी न होती होगी जितनी उन्हें अपने लड़के की इस सफलता से हुई।

नन्दलाल ड्योढ़ी में बैठा हुआ था। मकान की दीवारें और छतें बहुत पुरानी हो चली थीं। धमक ही से मिट्टी गिरती थी। कल्पना में वह एक नया मकान तैयार कर रहा था। उसकी आँखें बन्द थीं और उसके विचार न जाने कहाँ चक्कर काट रहे थे। एकाएक पैरों की चाप सुनकर वह चौंका। उसने देखा कि मलावी सामने खड़ी है।

मलावी मुहल्ले की एक दरिद्र विधवा थी जो मुहल्ले वालों का काम

करके पेट पालती थी। दिन भर मेहनत-मज़दूरी करके उसे जो पैसे मिलते, उससे किसी तरह अपना और अपने बच्चे का गुज़ारा करती थी, कभी-कभी सारी सारी रात बैठी मिर्चें कूटती रहती। मुहल्ले वालों को बड़ा बुरा लगता था। उनकी नींद हराम हो जाती थी। किसी से यह न होता था कि उसको कुछ मदद कर दे। आखिर एक दिन उसके पड़ोसी ने उसे रात में मिर्चें कूटने से मना कर दिया था। अब वह मुहल्ले वालों के डर से मिर्चें न कूटती थी पर रात-रात भर बैठी सूत अटेरती या निवाड़ बुनती। उसके लड़के का नाम था राम प्रताप। वह नवें दर्जे में पढ़ता था। साध थी मलावी को कि वह किसी तरह मैट्रिक करके कहीं छोटा-मोटा नौकर हो जाय तो उसके बुढ़ापे के दिन आराम से कट जायँ।

नन्दलाल बोला, "कहो मलावी, कैसे आई?"

"बच्चा तुम्हें बधाई देने आई हूँ।"

"बैठ जाओ न।"

वह बैठ गई।

नन्दलाल बोला "सुनाओ, अच्छी तरह तो हो न।"

उसका यह पूछना वैसा ही था जैसे कोई लखपती स्वामी अपने नौकर के स्वास्थ्य के बारे में पूछता है।

"क्या कहूँ, राम प्रताप की पढ़ाई का ख्याल जान खाये जाता है।" मलावी ने गिड़गिड़ाता सा उत्तर दिया। "अब कुछ भी खर्च कर सकने की मेरी तो सकत है नहीं। पहले दिन-रात मेहनत करती थी, अब न शरीर में बल ही रहा कि इतनी मेहनत करूँ, न पड़ोसी ही रात में काम करने देते हैं। कहते हैं, नींद उचाट होती है। मेरी एक अरज़ है, अगर सुन लोगे, भगवान् तुम्हारा भला करेगा।"

"कहो।"

"जब कहीं काम पर जाना तो अपने छोटे भाई रामप्रताप का भी ध्यान रखना।"

नन्दलाल अभिमान से बोला, "मलावी, मैं तुम्हारा दास हूँ। चिंता न करो। मै जाते ही उसे नौकर रखवाने की कोशिश करूंगा।"

मलावी की आँखें सजल हो गईं। नन्दलाल को ग़रीबों का कितना ध्यान है। उसने उसके सिर पर हाथ फेर कर दुआ दी—"बच्चा तुमने ग़रीबनी को ढाढ़स बँधाया है, परमात्मा तुम्हें सुख देगा!"

नन्दलाल की माँ बाहर से आती दिखाई दी और मलावी चुपके से खिसक गई। ग़रीबी में कितनी नम्रता और दीनता होती है और अमीरी की कल्पना में ही कितना अभिमान!"

नन्दी स्वामी क्षण भर को रुके, रूमाल से मुँह पोंछा और फिर कहना आरम्भ किया —

"एक वर्ष बीत गया। नन्दलाल होश्यारपुर में टिकट कलेक्टरी के इमतिहान की तैयारी कर रहा था। इस बीच में भूले से भी उसे कभी रामप्रताप का ख्याल न आया था। गाड़ी जा चुकी थी और वह स्टेशन के प्लेटफार्म पर कुर्सी डाले धूप में बैठा था।

"बाबूजी, यह आपका खत आया है।"

नन्दलाल ने पोस्टमैन से पत्र ले लिया और पढ़ने लगा। रामप्रताप का ख़त था, लिखा था :—

"भाई साहब, मैंने पढ़ना छोड़ दिया है। मेरी माँ पढ़ाई का खर्च नहीं उठा सकती। यदि हो सके तो कहीं दस-पन्द्रह रुपये की नौकरी का डौल कर दीजिए। मै उम्र भर आपका एहसान मानूंगा। मेरी बूढ़ी माँ ज़िंदगी भर आप को दुआएँ देगी। ख़त तो मैं पहले ही लिखता पर आपका पता मालूम न था। आपके घर वालों से पूछने की हिम्मत न पड़ती थी। बड़ी मुश्किल से पता पूछ कर यह ख़त लिख रहा हूँ।"

नन्दलाल ने पत्र पढ़ा और मलावी की दरिद्रता और उसके लड़के का

पीला मुख उसकी आँखों के आगे नाच उठा। उसकी आत्मा ने उसे धिक्कारा और वह भाग कर स्टेशन मास्टर के पास गया। उसके मुख पर संतोष का भाव झलक रहा था। उसने रामप्रताप को ख़त लिख दिया। और अपने मुहल्ले के किसी आदमी पर एहसान कर सकने की खुशी से दिन भर प्रसन्न-चित्त रहा।

दूसरे दिन रामप्रताप आया और आते ही उसके पैरों से लिपट गया। "भाई साहब, आपने हमारी लाज रख ली, डूबते हुओ को सहारा दे दिया।"

नन्दलाल बोल न सका। लेकिन एक अज्ञात आनन्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। उसने रामप्रताप को उठाया, उसे थपकी दी और फिर स्टेशन के अन्दर चला गया।

उस दिन से रामप्रताप 'काँटे वाले' का काम करने लगा।

छः साल आये और चले गये। अब नन्दलाल आदिलपुर का स्टेशन मास्टर था। एक मामूली 'काँटे वाले' को वह कब का भूल चुका था। रामप्रताप ने दो तीन पत्र भी लिखे, पर नन्दलाल ने उत्तर न दिया। अब वह तार बाबू नहीं था, टिकट कलेक्टर नहीं था, बल्कि स्टेशन का स्वतंत्र शासक था। इस छः साल के समय में वह टिकट कलेक्टर हुआ और फिर शीघ्र ही स्टेशन मास्टर बना दिया गया। पहले उसे छोटा सा स्टेशन ही दिया गया था लेकिन उसे आशा थी कि जल्द ही वह किसी 'बी' अथवा 'सी' क्लास के स्टेशन का स्टेशन मास्टर होगा।

सफलता का नशा बड़े बड़ों को बावला बना देता है। नन्दलाल तो बेचारा साधारण मनुष्य ही था। उसमें काफी परिवर्तन हो चुके थे। पहले वह शाकाहारी था, सिगरेट न पीता, शराब देखकर उसका जी मतलाने लगता था। अब वह माँस भी खाता था और सिगरेट और शराब भी पीने लगा

था। लेकिन यह सब होते हुए भी अपने काम का वह बड़ा ध्यान रखता था।

आज वह बड़ा प्रसन्न था। कल नया असिस्टेन्ट ट्रैफिक-इन्सपेक्टर आने वाला है और वह उस पर पूरी तरह अपनी योग्यता की धाक जमा देना चाहता है। उसका दफ़्तर शीशे की तरह दमक रहा था। सारा काम पूरा हो चुका था। रह रहकर वह असिस्टेन्ट की ओर देखता था जो बुरी तरह अपने काम में व्यस्त था। आखिर उससे चुप न रहा गया और बोला, "लाला साहब!"

असिस्टेन्ट ने लापरवाही से जवाब दिया "कहिए!"

"नया ए० टी० एस० आरहा है।"

"वह तो मुझे भी मालूम है।"

"तो क्या बिलकुल नया है?"

"बिलकुल नया" उसने अपना रजिस्टर और कलम दूर सरका कर कहा।

"क्या नाम बताया था?"

"मिस्टर आर० पी० पुरी।"

"तो क्या हिन्दू है?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है। शायद कोई ऐंग्लो इंडियन हो।"

असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर ने फिर रजिस्टर खींचा और काम करने लगा। और नन्दलाल का मस्तिष्क फिर कल्पना-लोक की उड़ान लेने लगा।

दूसरे दिन सुबह की गाड़ी स्टेशन पर आई। इसी गाड़ी से ए० टी० एस० आ रहा था। सबसे पीछे उसका डिब्बा लगा हुआ था। नन्दलाल ने अपने काले सूट पर नज़र डाली। चेहरे पर हाथ फेरा और बूटों पर दृष्टि डाल कर जल्दी से उस डिब्बे की ओर लपका।

''साहब अन्दर हैं ?'' उसने धीरे से बाहर खड़े चपरासी से पूछा।

''अभी खाना खा रहे हैं। आज इसी स्टेशन पर रुकेंगे।'' बैरे ने उत्तर दिया।

''इस स्टेशन पर ?''

''हाँ।''

नन्दलाल का हृदय धक् से रह गया। साहब कुछ कड़े स्वभाव के मालूम होते हैं। नहीं तो पहले ही दौरे में स्टेशनों की जाँच-पड़ताल क्यों करते। उसने सोचा था कि साहब पहली बार आ रहे हैं, स्टेशन देखकर आगे बढ़ जायेंगे। लेकिन अब वे यहाँ रुकेंगे। शायद जाँच-पड़ताल भी करें। पता नहीं किस स्वभाव के होंगे ! यह सोचता हुआ नन्दलाल पीछे मुड़ा और अपने को सम्हाल कर कुछ व्यस्त होते हुए उसने कड़क कर 'काँटे वाले' को आवाज़ दी और गाड़ी को काट कर मालगोदाम वाली लाइन पर ले जाने का आदेश दिया।

''कहो कैसा आदमी है ?'' असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर ने उसके कंधे को छूकर प्रश्न किया।

''यहाँ ही उतरेगा। देख लेना।''

''यहाँ ही उतरेगा !'' ए० ऐस० ऐम० का चेहरा फ़क हो गया। साहब की उपस्थिति स्टेशन पर प्रलय से कम महत्व नहीं रखती। जाने कब किस बात पर नाराज़ हो जाय। बाबू सिर झुकाये अन्दर चला गया और नन्दलाल बड़ी सजगता से स्टेशन पर घूमने लगा।

इंजिन ने सीटी दी। गार्ड ने झंडी हिलाई और गाड़ी चल दी। गार्ड उचक कर अपने डिब्बे में चढ़ गया।

''राइट टाइम ?''

''राइट टाइम !'' गार्ड ने झंडी हिलाते हुए नन्दलाल को उत्तर दिया और अपने डिब्बे में घुस गया।

नन्दलाल ने दूर मालगोदाम पर खड़ी अपने अफ़सर की स्पेशल बोगी पर एक दृष्टि डाली और फिर आफ़िस में आकर कुर्सी पर बैठ गया।

ए० ऐस० ऐम० ने प्रत्येक स्टेशन के टिकटों को अलग-अलग करके मेज़ पर रख दिया था और रजिस्टर में उनके नम्बर दर्ज कर रहा था।

"चलो भाई मिल आयें, कहीं नाराज़ न हो जाय।" नन्दलाल ने सहसा कुछ चौंक कर कहा।

"बस दो बंडल रह गये हैं।"

"अच्छा कर लो, पर जल्दी करो।"

नन्दलाल दो मिनट तक बेचैनी से बैठा रहा। पर साहब को देखने, उनसे अँग्रेजी में दो एक बातें करने, उन पर पहला इम्प्रेशन (Impression) अच्छा डालने का खयाल उसे आराम से न बैठने देता था। उसका डर दूर हो चुका था। संकट सिर पर आ गया था, अब उससे जूझने ही में ख़ैर थी।

"छोड़ो यार, आकर यह सब दर्ज कर लेना। अब चलो मिल आयें वर्ना कहीं नाराज़ न हो जाय।" नन्दलाल ने कहा, "इन अफ़सरों का क्या ठिकाना, इनसे भगवान समझें!"

छोटे बाबू ने एक लम्बी साँस ली और उठकर नन्दलाल के साथ चल दिया। रास्ते भर कोई बातचीत न हुई। नन्दलाल बातचीत करने के लिए आरम्भ के वाक्यों को मन ही मन दुहरा रहा था।

मालगोदाम आ गया। दोनों डिब्बे में घुसे। साहब उनकी ओर पीठ किये बैठे थे। लम्बे कद के पतले छरहरे युवक थे। पाँव की चाप सुनकर उन्होंने मुँह फेरा।

नन्दलाल जहाँ था, वहीं का वहीं खड़ा रह गया। उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हो रहा था। यह तो रामप्रताप है—वही रामप्रताप—मलावी का लड़का—आदिलपुर का काँटे वाला! उसे देखे छः-सात साल बीत चुके थे, पर नन्दलाल उसे तत्काल पहचान गया। उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। रामप्रताप के ओठों पर मुस्कराहट थी। पहले रामप्रताप फटे पुराने कपड़ों में रहता था, अब बहुमूल्य सूट पहने था।

पहले साधारण काँटे वाला था, अब ए० टी० एस०—उसका अफसर !
'आर० पी० पुरी—रामप्रताप पुरी !' नन्दलाल ने मन ही मन दुहराया।

ए० ऐस० ऐम० को नन्दलाल की दशा पर आश्चर्य हो रहा था। उसने आगे बढ़कर साहब से हाथ मिलाया। तभी नन्दलाल ने अपने को सम्हाल लिया। उसके मुख पर एक कृत्रिम मुस्कान फैल गई। यदि छोटा बाबू साथ में न होता तो वह रामप्रताप को अपने अंक में भर लेता। वहाँ से तीनों नन्दलाल के दफ़्तर में आये। कमरा शीशे की तरह चमक रहा था। रामप्रताप ने छोटे बाबू के सामने ही उसके सुप्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा की और इधर-उधर दृष्टि डालकर वह बाहर निकल आया। छोटा बाबू भी उन्हें बाहर तक छोड़ने आया और फिर सलाम करके अन्दर चला गया।

छोटे बाबू के अन्दर जाते ही रामप्रताप ने नन्दलाल को अपनी बाहों में भींच लिया और बोला, "भाई साहब, आपका उपकार जीवन भर न भूलूँगा।"

नन्दलाल नहीं बोला। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे, फिर रामप्रताप ने ज़रा सा हँस कर कहा, "भाई साहब आपने तो मुझे बिलकुल भुला ही दिया।"

नन्दलाल के मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार चक्कर काट रहे थे। उसके अधीन घरेलू नौकरों की तरह काम करने वाला साधारण सिगनल मैन* अब उसका अफ़सर होगा। उसकी इच्छा के आगे अब उसे सिर झुकाना होगा। उसकी खुशामदें करनी होंगी।

किन्तु अपने मनोभावों का लेशमात्र प्रतिबिम्ब भी उसने अपने चेहरे पर न आने दिया और हँस-हँस कर रामप्रताप से बातें करता रहा।

रामप्रताप बहुत खुश था। नन्दलाल से मिलने के लिए ही उसने

*सिगनल मैन=काँटे वाला

गाड़ी स्टेशन पर रुकवाई थी। उसके पाँव ज़मीन पर न पड़ रहे थे। उसने मालगोदाम के सामने सुनहरी धूप में दो कुर्सियाँ रखवाईं और फिर नन्दलाल को अपने जीवन की कहानी सुनाने लगा। उसी प्रकार जैसे कोई छोटा भाई विलायत से लौट कर अपने बड़े भाई को वहाँ की बातें सुनाये—किस तरह होशियारपुर में काम करते हुए उसने प्राइवेट मैट्रिक की परीक्षा दी और फिर काँटे वाले की नौकरी छोड़कर वहीं प्राइमरी स्कूल का मास्टर हो गया। और फिर प्राइवेट एफ० ए० और बी० ए० का इमतिहान पास किया। और बी० ए० में वह पंजाब भर में प्रथम रहा। फिर ए० टी० एस० की प्रतियोगिता में भाग लेकर सफलता पाई। और फ़िरोज़पुर डिवीज़न में उसकी नियुक्ति हुई। अपने बारे में सब सुनाकर उसने बड़ी विनम्रता से नन्दलाल के सामने हाथ जोड़ दिये और बोला, "भाई साहब, आपने आड़े वक्त मेरी सहायता की, अब इस सेवक को अवसर दीजिएगा कि वह आपकी कुछ सेवा कर सके!"

दो बज गये थे और नन्दलाल ने अभी तक खाना भी न खाया था। उसने रामप्रताप से आज्ञा ली और चल पड़ा। उसके हृदय में भयानक संघर्ष चल रहा था। कभी वह ईर्ष्या से जल उठता था और सोचता काँटे वाला रामप्रताप और मेरा अफसर, जिसे मैंने पन्द्रह रुपये पर नौकर रखवाया था। अब वह मुझ पर हुकुम चलायेगा। उसकी हर बात मुझे माननी होगी, उसकी खुशी का ख्याल रखना होगा। इस विचार से ही उसके तन-मन को आग लग जाती......और कभी सोचता रामप्रताप बड़ा भला लड़का है, मुझे बड़े भाई के समान समझता है, उसकी उन्नति से तो मुझे प्रसन्नता होनी चाहिए। मेरा छोटा भाई यदि मेरा अफ़सर हो जाय तो क्या मुझे दुख होगा और वह अपने आपको धिक्कारता...... किन्तु उसके विचार फिर पलटा खाते। वह सोचता—राजमद बुरा होता है। रामप्रताप चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, है तो अफसर। जाने किस दिन नाराज़ हो जाय, किसके सिखाने-पढ़ाने में आ जाय......और यही सब सोचता हुआ वह मालगोदाम से अपने क्वार्टर में आया। नौकर

ने ठंडा खाना सामने ला रखा। किसी तरह दो कौर निगल उसने शराब का एक गिलास चढ़ाया और लेट गया।

अगले दो वर्षों में नन्दलाल निरन्तर पतन के गर्त में धँसता गया।

आदिलपुर से इस वर्ष गेहूँ खूब बाहर भेजा गया था। नन्दलाल ने जी खोलकर रिश्वत ली और खूब हाथ रंगे। अफसर का डर न था और संगति भी बुरे लोगों की हो गई। 'जैसे कमाया वैसे गँवाया' का-सा हाल हो गया। दिन-रात नशे में धुत्त रहने लगा। अफ़सर की तरफ से लापरवाही। चारों पहर शराब ढलने लगी—हर वक्त नशे में चूर।

रामप्रताप ने ये रंग देखे तो उसे अपनी भयानक भूल और अपने कर्तव्य का भान हुआ। यदि उसने आरम्भ से नन्दलाल पर कुछ नियंत्रण रखा होता तो कभी ऐसा न होता। स्वयं वह बड़ा संयमी था। भयंकर ग़रीबी के दिन देखे थे और इस पद ने उसका दिमाग़ न बिगाड़ा था। उसकी प्रकृति में लेशमात्र परिवर्तन न आया था। राजमद ने उस पर कोई प्रभाव न डाला था। उसे तीन साल ऐ० टी एस० बने हो गये थे, पर वह वही पुराना रामप्रताप था। यही कारण था कि उसने नन्दलाल को उसके हाल पर छोड़ रखा था। यदि कभी किसी बात से मना भी किया तो बड़े मीठे शब्दों में। लेकिन नन्दलाल के कानों पर जूँ न रेंगी। जब कभी रामप्रताप भूले से ऐसी बात कह देता जिससे जान पड़ता कि वह नन्दलाल पर एहसान कर रहा है तो नन्दलाल जल उठता था। उसकी बात एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता था। एक समय उसमें काहिली का नाम तक न था, पर अब उससे कोई काम हो न होता था। मन्थली स्टेटमेंट (महीने का हिसाब-किताब) भेजने में सदा देर हो जाती। रामप्रताप यह सब देखता और डरता कि कहीं कोई दूसरा स्टेशन मास्टर डी० टी० ऐस० के पास उसकी शिकायत न कर दे कि ऐ० टी० एस० लालची है और रिश्वत लेता है। एक दिन उसने नन्दलाल

को बुलाया और बोला, "भाई साहब, अब मैं ज्यादा देर तक यह सब नहीं सह सकता।"

नन्दलाल ने कुछ चौंक कर रामप्रताप को ओर देखा। वहाँ सख्ती और गंभीरता थी। क्षण भर के लिए उसका सोया आत्म-सम्मान जाग उठा, चिंगारी पर से राख हट गई। वापस आकर उसने महीने भर का काम रात भर में निबटा डाला। दूसरे दिन भी उसी तरह व्यस्त रहा। महीने का हिसाब-किताब तैयार किया। बिल्टियों का निरीक्षण किया और टिकटों का स्टाक गिना। स्वाभिमान की आग हवा पाकर भड़क उठी थी। लेकिन शाम को फिर यार-दोस्त जमा हो गये। और वह चिनगारः जो ज्वाला बनने जा रही थी, अनायास शराब के तूफ़ान में बह गई। खोलते ही नन्दलाल एक घूँट में आधी बोतल खाली कर गया।

रात के सात बजते-बजते वह नशे में धुत्त हो चुका था। स्टेशन पर गाड़ियों का क्रास था। 'काँटे वाले' ने आकर चाभियाँ मांगी। उसने निकाल कर फेंक दीं।

भयानक सर्दी पड़ रही थी। काँटे वाला सोच रहा था कि यदि उसे भी एक-दो पैग इस सर्दी में मिल जाते तो कितना अच्छा होता। तभी सिगनल के उस पार गाड़ी ने सीटी दी। चौंक कर काँटे वाले ने काँटा बदला और उस पर बैठ कर सपने देखने लगा। अपने विचारों में मग्न उसने काँटा ग़लत बदल दिया था। उसे अपनी भूल का पता तब चला जब गाड़ी धड़-धड़ करती उसके पास से होकर ग़लत लाइन पर बढ़ गई। पर अब क्या हो सकता था। वह दो गाड़ियों की टक्कर का धमाका सुनने के लिए सांस रोके खड़ा रह गया। निमिष भर के लिए उसकी आँखों में उलटी हुई गाड़ी की तस्वीर नाच गई। फिर उसे गिरफ्तारी का ख़्याल आया। वह जान बचाने को भाग उठा। पर धमाका नहीं हुआ, गाड़ियाँ नहीं टकराईं। अब उसका चित्त ठिकाने आया और वह स्टेशन की ओर चल पड़ा। पैसेन्जर ट्रेन के ड्राइवर ने उसकी भूल समझ ली थी। उसने सामने दूसरी गाड़ी खड़ी देखकर गाड़ी वहीं रोक दी थी। दोनों इंजिन

एक दूसरे से दो इंच के अन्तर पर रुक गये। स्टेशन पर एक हलचल सी मच गई। गाड़ियों में टक्कर होते होते बची। रामप्रताप भी उसी गाड़ी में आ रहा था। वह जल्दी से उतरा और नन्दलाल के कमरे में घुस गया।

नन्दलाल शराब के नशे में धुत्त पड़ा था। वह बहकी बहकी बातें करने लगा। उसे इस दशा में देखकर रामप्रताप गुस्से में भर कर वापस चला आया। असिस्टेन्ट स्टेशन मास्टर ने तेज़ी दिखाते हुए गाड़ियों को चलता किया।

सारी रात नन्दलाल वैसे ही पड़ा रहा। कितनी बड़ी दुर्घटना होते होते बची, इसकी उसे कुछ भी खबर न हुई। दूसरे दिन इसके पहले कि उसे होश आता, उसकी मुअत्तली का आदेश आ पहुँचा। कुछ दिन बाद सरकारी इन्क्वाइरी(enquiry)हुई, पर रामप्रताप ने उसकी ऐसी रिपोर्ट कर दी कि वह मुअत्तली *बरख्वास्तगी† में परिणत हो गई।

नन्दलाल घर आया। वहाँ की दुनिया बदल चुकी थी। मलावी मर चुकी थी और उसकी टूटी झोंपड़ी की जगह एक आलीशान मकान बन गया था। नन्दलाल का मकान भी नया था, पर उस मकान के मुकाबिले में न ठहरता था। उसके माँ-बाप मर चुके थे और अब वह अकेला था। उसके पास इतना रुपया था कि चाहता तो सादगी से तमाम जिन्दगी गुज़ार सकता, लेकिन अब उसे किसी चीज़ की परवाह न थी। उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला सुलग रही थी। शराब उसने दूसरे ही दिन छोड़ दी थी। सोये हुए आत्माभिमान ने एक बार फिर सिर उठाया और वह रामप्रताप से बदला लेने के लिए व्यग्र हो उठा। लेकिन पन्छी के पर कट चुके थे, वह उड़ न सकता था। इसलिए लोगों में रामप्रताप की नीचता का बखान करके ही अपना हृदय ठंडा कर लेता था। निर्बल के पास अपना गुस्सा उतारने के लिए गालियों से बढ़कर और होता भी क्या है।

*मुअत्तली = Suspension। †बरख्वास्तगी = Dismissal

उन गालियों से रामप्रताप को कोई हानि चाहे न होती हो पर उसके मन का ताप तो मिट जाता था।

रामप्रताप उसे बचा सकता था। बहुत बार उससे बड़ी रेल की दुर्घटनाएँ हो गईं, पर स्टेशन मास्टर अफ़सरों की सहायता से बाल-बाल बच गये। लेकिन रामप्रताप को तो अपनी न्यायप्रियता का प्रमाण देकर विभाग पर कर्तव्यपरायणता की धाक जमानी थी। और इस अपनी न्यायप्रियता पर उसने बलि किसको चढ़ाई—अपने मुंह-बोले भाई की!—नन्दलाल जब ये बातें सोचता तो उसका हृदय प्रबल आक्रोश से जल उठता। उसका जी चाहता कि कोई आ जाय जिसके सामने वह जी खोल कर रामप्रताप को गालियाँ दे सके।

जब उसका कोई पड़ोसी अथवा परिचित उसके नौकरी छूटने की बात पूछता तो वह नमक मिर्च लगाकर रामप्रताप के विश्वासघात और कृतघ्नता की बात कहता। उन उपकारों की चर्चा करता जो उसने रामप्रताप पर किये थे और सुनने वाले से पूछता कि क्या उसका यही धर्म था। सुनने वाला प्रायः ऐसी ही कोई बात कहता कि "भाई कुत्ते को यदि गद्दी पर बैठा दिया जाय तो वह भूंकना थोड़ी छोड़ देगा।" या फिर यह कि "भाई मुंह-बोले की तो बात ही दूर रही, आज कल अपने भाई अपने नहीं होते।" आदि-आदि......और इन बातों को सुनकर नन्दलाल का कलेजा ठंडा हो जाता।

नन्दलाल की आर्थिक स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती गई। उसने स्टेशन मास्टरी की थी। रुपया पानी की तरह कमाया और बहाया था, आदतें वही थीं। जल्द ही सब कुछ खत्म हो गया और दर-दर भटकने की नौबत आ गई। उसने दोस्तों की महफ़िल में बैठना, यहाँ तक कि ताश खेलना तक छोड़ दिया। एक कमरे में पड़ा रहता, कभी शराब को और कभी रामप्रताप को कोसा करता।

रोटी भी स्वयं पकाता था। पत्नी का देहान्त हो गया था और कोई रिश्तेदार था नहीं। एक दिन शाम को जब उसने बर्तन में हाथ डाला तो

आटा खत्म हो चुका था। वह पड़ोसी के घर गया पर उसने उधार देने से इन्कार कर दिया। पहले ही नन्दलाल उससे दो पंसेरी आटा उधार ले चुका था। नन्दलाल वापस लौटा, किसी और के पास जाने का साहस उसे न हुआ। एक घंटे तक गुम-सुम बैठा रहा। उसकी आँखों में आँसू भर आये। फिर आकृति पर दृढ़-निश्चय की लकीरें तन गईं। अलमारी से ढूंढकर एक चाकू निकाला और उसे तेज़ करने लगा। उसके बाद दरवाज़ा बन्द करके बाहर निकल गया।

वह स्टेशन की तरफ़ चल पड़ा। सुबह तीन बजे फ़िरोज़पुर को गाड़ी जाती थी। वहीं अफसरों के बंगले थे।

उसने घड़ी पर दृष्टि डाली। एक बजने में ४५ मिनट थे। स्टेशन पर सन्नाटा छाया हुआ था। कहीं-कहीं कम्बल ओढ़े गठरी से बने मुसाफिर सो रहे थे। नन्दलाल भी एक तरफ़ बैठ गया। यहाँ आकर उसे कुछ शान्ति सी महसूस हुई। ज़रा देर के लिए आँख लग गई और उसने स्वप्न देखा कि उसने रामप्रताप की हत्या कर डाली है और जंगल में भाग गया है। पुलिस उसकी खोज में है। वह उनके साथ-साथ फिरता है, पर वह उसे देख नहीं पाते और वह सबको देखता है। आख़िर यह जादू टूट गया। एक सिपाही ने उसको पकड़ लिया। फिर आकाश पर ज़ोरों से बिजली कड़क उठी। सिपाही डर गया। फिर बड़े ज़ोरों का शोरगुल मच गया और उसकी आँख खुल गई। उसके सारे बदन से पसीना छूट रहा था।

फिरोज़पुर से एक बजे वाली गाड़ी आ गई थी। नन्दलाल अपनी जगह पर बैठा-बैठा अनमनी दृष्टि से मुसाफिरों को देखने लगा। यकायक उसकी दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी जो फर्स्ट क्लास के डिब्बे से निकल कर उसके पास से होता हुआ गेट के बाहर चला गया।

नन्दलाल की आँखें भयानक रूप से सिकुड़ कर छोटी हो गईं। उसने अपनी शक्तियों को एकत्र किया और चाकू पर हाथ रखकर रामप्रताप के पीछे चल पड़ा।

रात के एक बजे वहाँ कोई सवारी तो क्या मिलती, इसलिए राम-प्रताप पैदल ही चलने लगा। उसके हाथ में एक बैग था और वह सिर झुकाये हुए धीरे-धीरे चला जा रहा था। सहसा नन्दलाल ने उसकी पीठ पर वार किया और वह गिर पड़ा। उसने उठने की कोशिश की पर उसी समय नन्दलाल ने और दो वार किये और दाँत पीसते हुए चिल्लाया—"यह है कृतघ्नता का बदला!"

रामप्रताप ने आख़िरी बार दृष्टि उठाकर देखा कि नन्दलाल की आँखों से चिनगारियाँ सी निकल रही थीं। कुछ कहने को आतुर वह उठा कि अचेत होकर गिर पड़ा।

नन्दलाल वहाँ से भागा। चाकू उसने रास्ते में एक कुएँ में फेंक दिया। घर के दरवाज़ों को अच्छी तरह बन्द किया और ऊपर जाकर लेट गया।

दूसरे दिन शहर में हलचल मच गई। रामप्रताप पर किसी ने स्टेशन के रास्ते पर घातक आक्रमण किया था। पुलिस उसे अस्पताल ले गई। पर घाव गहरे लगे थे। रामप्रताप ने अपना अन्तिम बयान दिया, वसीयत की और दम तोड़ दिया।

लोगों ने ऐसी जवान मौत पर आँसू बहाये। जिसने सुना उसी के मुँह से लम्बी साँस निकल गई। मुहल्ले वालों के हृदय से भी तमाम ईर्ष्या बह गई। वे भी जो उसके दुर्गुण गिनाते थे, अब उसके गुणों का बखान करने लगे। मलावी का वंश उजड़ गया। कोई नामलेवा तक न रहा। लोग उसके आलीशान मकान की ओर देखते थे और आँसू बहाते थे।

नन्दलाल घर में बैठा पछता रहा था। उसने रात में ही अपने सारे कपड़े जिन्हें वह पहने था, जला दिये थे। भय से उसका हृदय बैठा जा रहा था। फांसी का फन्दा अपने सामने नाचता दिखाई दे रहा था। उसे अपनी गिरफ़्तारी का विश्वास हो चुका था। एक बार सोचा कि

भाग जाय। लेकिन इससे और शक होने का डर था। उसने सोचा जब किसी ने देखा ही नहीं तो शक कैसे हो सकता है। लेकिन जब उसने सुना कि रामप्रताप मरा नहीं था और उसने अस्पताल में अपना आख़िरी बयान दिया है तो उसके होश उड़ गये। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया। उसने तो उसें मरा समझ लिया था। रात की सारी बातें बारी-बारी से नेत्रों में घूम गईं। वह नीचे बैठक में आया और जड़ सा होकर कुर्सी पर बैठ गया।

सामने दरवाज़े के साथ लगे दो लिफ़ाफ़े पड़े थे। नन्दलाल ने उन्हें उठा लिया। काफ़ी दिनों से वह बैठक में नहीं आया था। पोस्टमैन उन्हें इसी जगह फेंकता रहा था। नन्दलाल नें उन्हें उठा कर पढ़ना शुरू किया। पहला लिफ़ाफ़ा खोला। रामप्रताप की ओर से था। उसने अपने कृत्य के लिए क्षमा माँगते हुए लिखा था, "भाई साहब आपका बच्चा नौकर है। आपको रोटी के लिए कष्ट करने की क्या ज़रूरत है। आप मेरे पास फ़िरोज़पुर आ जाइए।"

नन्दलाल ने दूसरा लिफ़ाफ़ा खोला। उसमें रामप्रताप ने शिकायत की थी कि उसने उसके पहले खत का उत्तर क्यों नहीं दिया और लिखा था "भाई साहब, मेरे अपराधों को क्षमा कर दो। जो कुछ भी हुआ, वह परिस्थितियों के वश हुआ। यदि आप न आये तो मैं भी नौकरी छोड़ दूँगा।"

तीसरे पत्र में उसने लिखा था "मैं आपको लेने आ रहा हूँ। अगर आप न मानेंगे तो आपके पैरों पर गिर जाऊँगा। रोऊँगा, आँसू बहाऊँगा; लेकिन आपको लेकर ही जाऊँगा।"

यह ख़त हाल का ही था। तीन दिन पहले की मुहर पड़ी थी। नन्दलाल के हाथ से पत्र छूट कर गिर पड़ा और उसने दोनों हाथों से सिर थाम लिया। उसने अपने भाई का खून कर डाला था—उसे मौत के घाट उतार दिया था। उस भाई का खून—जिसका हृदय निर्मल जल सा साफ़

और मालूम था। जो उसे ही लेने आ रहा था। भाई का हत्यारा!—नन्दलाल का सिर घूमने लगा।

बाहर से किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। नन्दलाल ने झाँक कर देखा, बाहर पुलिस का आदमी खड़ा है। अब उसे गिरफ़्तारी का डर न रह गया था—मौत का डर न रह गया था। रामप्रताप ऐसे भाई को मार कर जीना उसे दूभर लग रहा था। उसने दरवाज़ा खोला। लेकिन सिपाही ने उसे गिरफ्तार नहीं किया। उसने सलाम किया और पास आकर बैठ गया।

'क्या आप मिस्टर पुरी के भाई है?'

नन्दलाल कहना चाहता था कि मैं उसका हत्यारा हूँ पर कह न सका और बोला 'जी हाँ मैं उनका मुँह-बोला भाई हूँ।'

सिपाही ने कहा, 'रामप्रताप की किसी ने हत्या कर डाली है। उन्होंने आख़िरी बयान के साथ अपनी वसीयत भी की है। अपनी सब जायदाद उन्होने आपके नाम छोड़ी है। उनकी लाश अस्पताल में पड़ी है। आप चल कर उसे ले आयें और 'किरिया करम' का इन्तज़ाम करें।'

नन्दलाल रो रहा था। सिपाही ने उसे ढाढ़स बँधाया पर वह क्या जाने नन्दलाल क्यों रो रहा था। सिपाही चला गया।

नन्दलाल अस्पताल जाकर रामप्रताप का शव ले आया। उसने बड़े शानदार तरीके से भाई का दाह-संस्कार किया और फिर घर आकर अपने किये पर पछताने लगा। रामप्रताप का हँसमुख चेहरा, उसकी अन्तिम तड़प बार-बार उसके नेत्रों के आगे घूमने लगी। उसे ऐसा जान पड़ने लगा जैसे वह पागल हो जायगा। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लेने की बात सोची। एक दिन थाने की ओर चला भी। रास्ते में पोस्ट-मैन ने एक लिफ़ाफ़ा दिया। उसने पढ़ा और आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। रामप्रताप ने पच्चीस हज़ार का बीमा करा रखा था। वह सब नन्द-लाल को मिलना था। उसने अदालत जाने का विचार छोड़ दिया और

घर आ गया। दूसरे दिन उसने सुबह बीमा कम्पनी को ख़त लिखा और घर से निकल गया।"

नन्दी स्वामी क्षण भर को रुके। दर्शकों की उत्सुकता चरम सीमा को पहुँच गई थी। तनिक खाँस कर वे बोले।

"अब नन्दलाल नन्दी स्वामी बन चुका था। रामप्रताप की एक यादगार बनाने के लिए वह देश-विदेश घूमा—भाँति-भाँति के कष्ट सहे और रामप्रताप की यादगार बनाकर अन्त में सफल मनोरथ हुआ। आज वह यादगार आपके सामने है, इसका जो भी श्रेय है, वह रामप्रताप को है, जो मानवों में देवता था और जिसने नन्दलाल से दानव को भी मानव बना दिया।"

लोगों ने देखा स्वामी जी की आँखों से आँसू बह रहे हैं, पर उनका मुँह एक स्वर्गिक ज्योति से जगमगा रहा है।

स्वामी जी ने अपना गला साफ़ करते हुए फिर कहा "भगवान् को लाख-लाख धन्यवाद है कि रामप्रताप की वह यादगार पूरी हो गई।" उन्होंने अपनी गर्दन से हार उतारे और रामप्रताप की तस्वीर पर चढ़ा दिये। वे बोले "नन्दलाल अपने भाई का हत्यारा बन कर अब अधिक जीना नहीं चाहता। पुलिस आज भी मिस्टर पुरी के खूनी की तलाश में है। उसके लिए कई हजार के इनाम भी घोषित हो चुके हैं। अब मिस्टर पुरी का हत्यारा आप सबके सामने..."

इससे पहले कि स्वामी जी अपनी बात समाप्त करते, सुपरिंटेन्डेन्ट पुलिस ने खड़े होकर कहा "मैं आपको मिस्टर रामप्रताप पुरी की हत्या के जुर्म में गिरफ्तार करता हूँ।"

और इसके पहले कि जनता कुछ समझे, स्वामी जी पुलिस वालों के साथ पंडाल के बाहर खड़ी पुलिस की गाड़ी में सवार होकर जा चुके थे।



ताँगेवाला

गाड़ी एक नम्बर प्लेटफार्म पर रुकी। और एक तीसरे दर्जे के डिब्बे से एक कमज़ोर सी आवाज़ ने पुकारा "कुली—कुली इधर आना।"

पर लोगों को तो चढ़ने-उतरने की पड़ी थी। चढ़ने वाले उतावले हो रहे थे और उतरने वाले परेशान थे। ऐसे में कुलियों के लिए उस क्षीण स्वर का सुन पाना नितान्त असम्भव था।

उस सारे कोलाहल को बेधती हुई एक क्षीण, पर तीखी और घबराई आवाज़ फिर डिब्बे के बाहर गूंजी, "कुली—कुली, इधर।" कुछ देर बाद खिड़की में से रास्ता बनाता हुआ एक कुली किसी तरह अन्दर घुसा और कुछ क्षण के बाद सिर पर एक पुराना ट्रङ्क और हाथ में छोटा सा बिस्तर लटकाये वह बाहर निकला। ट्रङ्क का रंग बिलकुल उड़ चुका था, किनारे टूटे हुए थे और वह कपड़ों की रक्षा के बदले निकट गुज़रने वालों के कपड़े फाड़ने का काम बेहतर कर रहा था। बिस्तर भी किसी होलडाल में बन्द बिस्तर न था। एक दरी में कुछ कपड़े, चादर और तकिया रखकर, गोल लपेटकर रस्सी से बाँध दिया गया था।

पीछे से आवाज़ आई, "भाई इसे ट्रङ्क पर रख ले, नहीं तो रस्सी टूट जायगी।" एक क्षीण-काय सफेद बालों और दुहरी कमर वाली बुढ़िया काँपते हुए हाथों से खिड़की का सहारा लेकर नीचे उतरी!

"मुझे ताँगे तक पहुँचा दे भाई, तेरा भला हो" प्लेटफार्म पर पाँव रखते हुए उसने जैसे निष्कृति की एक लम्बी साँस ली।

"नमस्ते माँ जी" गाड़ी में बैठी एक युवती ने अपने मीठे स्वर से कहा।

बूढ़ी चौंक सी पड़ी और सहसा उसे युवती का ध्यान आ गया जिससे अभी कुछ देर पहले वह मां-बेटी का सम्बन्ध स्थापित कर चुकी थी। वह मुड़ी और अपना हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया, "जीती रहो बच्ची, सुखी रहो !"

गार्ड ने झंडी हिलाई, इंजन ने सीटी दी और धुआं उड़ाता हुआ फिर अपनी मंज़िल की तरफ़ चल पड़ा।

एक लम्बी सांस लेकर बुढ़िया ने मुड़कर देखा—कुली उसके पीछे पीछे आ रहा था। वह स्टेशन के फाटक की ओर बढ़ी।

जालंधर जंक्शन तो है पर इतना बड़ा नहीं कि यात्री प्लेटफार्मों की भूल भुलैया में ही खो कर रह जाय। दो लम्बे लम्बे प्लेटफार्म हैं जिन्हें पुल के द्वारा दो दो भागों में बांटकर चार नम्बर लगा दिये गये हैं। बाहर निकलने का रास्ता नम्बर एक प्लेटफार्म पर है। उसने जल्दी से टिकट दिया और बाहर निकल आई। वह मुस्कान जो नवयुवती से बातें करते हुए उसके चिंता भरे मुख पर उभर आई थी, फिर दुख के सागर में डूब गई। उसके नेत्रों में उसकी बीमार भतीजी का चित्र घूम गया, जिसे देखने के लिए वह हरिद्वार से सीधी इधर आई थी। लेकिन तांगे वालों के शोर ने उसके विचारों का क्रम तोड़ दिया।

"इधर आइए, मां जी !"

"सिर्फ एक सवारी दरकार है, तांगा चला जा रहा है, एक।"

"बैठिए, अभी चल दूँगा।"

"पँजपीर जाइएगा न ?"

"बस्ती जाना हो तो इधर आ जाइये, बस तांगा तैयार ही है।"

पर उसने सबकी सुनी-अनसुनी कर दी और सबसे पीछा छुड़ाकर कुली के साथ सीधी एक तांगे की ओर बढ़ी जो दूसरे तांगों से अलग खड़ा था जैसे उसे सवारियों की ज़रूरत ही न हो। न वह गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहा था, और न बढ़ बढ़कर बातें ही बनाता था।

"तांगा खाली है ?" कुली ने पूछा।

"जी हाँ," तांगे वाले ने जवाब दिया।

वह बैठ गई। कुली ने ट्रङ्क और बिस्तर नीचे उसके पैरों के पास लगा दिया। तांगा चल पड़ा। पर किधर जाना है, न तांगे वाले ने ही पूछा और न घबराहट में बुढ़िया ने ही बताया।

"हम किधर जा रहे हैं ?" कुछ देर बाद चौंक कर बुढ़िया ने पूछा।

"आपको किधर जाना है ?"

"छावनी वाली सड़क पर, फाटक के पास।"

तांगे वाला हँसा, "हम तो शहर आ गये हैं माई।" और फिर बोला "छावनी की सड़क पर आप कहाँ जायेंगी ?"

"थाने के पास !"

"पहले क्यों न बताया मां जी," तांगे वाला उलाहने भरे स्वर में बोला, "यह तो होशियारपुर का अड्डा आ गया है। अब फिर सारा रास्ता वापस जाना पड़ेगा। बड़ा चक्कर लगेगा।"

"जो भी हो भाई, मुझे तो वहीं ले चल।"

"आप फिकर न करें। अभी ले चलता हूँ।" कहते हुए उसने तांगा मोड़ लिया और घोड़े को पुचकारते हुए बोला, "चल बेटे, ज़रा जल्दी।"

और तांगा हवा से बातें करने लगा।

तांगे वाला कौन था ? कहाँ से आया था ? यह किसी को मालूम न था। तरह तरह की बातें उसके अतीत के बारे में फैली हुई थीं। कुछ तांगे वालों का ख्याल था कि उसकी प्रेयसि उसके शहर से ब्याह कर यहाँ आई है, उसी के फ़िराक में यह भी यहाँ चला आया है; दूसरे कहते कि नहीं, यह तो बड़ा भारी शराबी कबाबी था, पर एक फ़कीर के कहने पर इसने

तौबा कर ली है। जितने मुंह उतनी बातें, लेकिन इतना सब जानते थे कि वह किसी अच्छे घर का सहृदय युवक है जो दूसरों के दुख-दर्द को समझता है।

उसे यहाँ आये बहुत दिन न बीते थे। एक सांझ जब तांगे वाले अपने अपने घोड़ों को दाना-पानी देकर तम्बाकू पीने को जमा हुए थे तो पहली बार उन्होंने उसे देखा था। वह अभी युवक ही था पर दाढ़ी-मूँछों के बढ़ जाने से उसकी उम्र कुछ अधिक लगती थी। सारा चेहरा दाढ़ी-मूँछों से छिपा रहता था और सिर पर रूखे-रूखे बाल लहराया करते थे, जो उसकी उदासीनता और निर्पेक्षता को और भी उजागर करते थे। फिर भी उसमें कुछ ऐसा आकर्षण था कि आदमी अपने आप उसकी ओर खिच आता था। शायद इसका कारण उसकी वेदनामयी आँखें थीं, जो उसके सारे व्यक्तित्व पर छाई रहती थीं।

स्टेशन के करीब पहुँच कर बुढ़िया ने कहा, "हम तो फिर स्टेशन आ गये भाई।"

"हाँ मां जी," तांगे वाला नम्रता से बोला, "मंडी के ऊपर से होकर जाना पड़ेगा।"

उसमें और दूसरे तांगे वालों में यही अन्तर था। वह उन सब से कहीं अधिक नम्र था, किसी से लड़ता झगड़ता न था। साधारणतया तांगे वाले सवारियों को अपनी ओर खींचने के लिए बुरी तरह लड़ते-झगड़ते हैं और बुरी-बुरी गालियाँ बका करते हैं। लेकिन उसके मुँह से कभी किसी ने कोई गाली न सुनी थी। शहर के अधिकतर भद्र पुरुष उससे परिचित हो चुके थे और उसके तांगे में जाना पसंद करते थे।

वह अपनी जगह पर चुपचाप खड़ा रहता था। ज़्यादा कमाने के लिए कभी यत्न न करता था। अपने और घोड़े के लिए जितना आवश्यक होता, उतना ही कमाकर वह निश्चिन्त हो जाता, उससे ज्यादा मेहनत उसने अपने घोड़े से कभी न ली थी। तांगा सुन्दर था और घोड़े को तो वह बेटे की तरह समझता था। सुन्दर, सुडौल जिसे देखकर आंखों की

प्यास बुझती थी और उसे पुचकारने को जी चाहता था। अपने साथी तांगे वालों से पहले वह उसे खोल देता था और प्रेम से दाना पानी देता। उसका नाम उसने 'सन्तोष' रख छोड़ा था। दोनों में कौन अधिक सन्तोषी है, यह कहना कठिन था। दाना खिला चुकने के बाद जब वह उसकी पीठ सहलाता और गर्दन थपथपाता हुआ उसका नाम लेकर पुकारता था तो वह हिनहिना कर गर्दन उठाता जैसे कह रहा हो, 'मैं भी तुमसे कम प्रेम नहीं करता।'

दूसरे तांगे वालों ने कई बार उससे घर-बार का पता पूछने की कोशिश की थी। लेकिन वह हमेशा टाल जाता था। उसकी करुणाद्र आँखों को देखकर अधिक अनुरोध करने का उन्हें साहस न होता था।

मंडी को पार करके तांगा कम्पनी बाग को जाने वाली सड़क पर मुड़ा। अचानक तांगे वाले ने पूछा, "आपको थाने में जाना है। मां जी।"

"नहीं बेटा, थाने के पास ही।"

"पर वहाँ तो कोई मकान नहीं माँ जी।"

"हाँ मकान तो नहीं," बुढ़िया बोली, "लेकिन मेरी भतीजी बीमार है। उसे तपेदिक है और डाक्टरों ने सलाह दी है कि उसे बाहर खुली हवा में रखा जाय। इसीलिए मेरे भतीजे ने वहीं एक झोंपड़ी सी बनवा ली है। यही उसने खत में लिखा है। मैं तो जालंधर पहली बार आई हूँ बेटा। कुली ने तुम्हारे तांगे में लाकर बैठा दिया। अब ठीक जगह पहुँचा देना भाई।"

"आप बिलकुल चिन्ता न करें मां जी", तांगे वाले ने कहा, "जहाँ भी होगा मैं खोजकर आपको पहुँचा दूँगा।"

"तेरी बड़ी उमर हो बेटा," उसने एक लम्बी सांस लेकर कहा, "क्या कहूँ भाई, मैं तो बहुत दिनों से तीर्थ यात्रा कर रही थी। हरिद्वार में थी जब मुझे छोटी भतीजी का खत मिला कि संतोष बीमार है।"

"संतोष!" तांगे वाले ने चौंक कर पूछा।

"क्यों ?" बुढ़िया बोली।

"कुछ नहीं," एक लम्बी साँस लेते हुए वह बोला, "मेरे घोड़े का नाम भी सन्तोष है।"

उसका मुख पीला पड़ गया था, पर बुढ़िया ने यह नहीं देखा। वह अपनी धुन में बातें करती गई। और तांगे वाले के सामने शायद उसके घोड़े की तस्वीर खिंच गई। जब वह बीमार होकर सूख गया है—सिर्फ हड्डियों का पिंजर मात्र रह गया है। और बुढ़िया कह रही थी, "क्या कहूँ भाई, चाँद जैसी लड़की थी। माँ-बाप लाहौर ही में रहते थे। वहीं एक लड़के के साथ उसकी शादी हुई थी। शादी के कुछ दिनों बाद मेरे भाई और भावज का स्वर्गवास हो गया। घर में सिर्फ मेरा भतीजा और छोटी भतीजी रह गये। बाद में वह जालंधर में नौकर हो गया तो मेरी छोटी भतीजी भी अपने भाई के पास आ गई। सन्तोष की शादी में मैं बीमारी के कारण न आ सकी थी। मुझ पर भी नयी नयी चोट पड़ी थी। उनका स्वर्गवास......अपने पति की याद आते ही बुढ़िया की आँखें भर आईं, और आवाज़ भर्रा गई। दुपट्टे से आँखें पोंछकर उसने फिर कहना शुरू किया, "सुना था लड़का बड़ा सुन्दर है। लेकिन शादी के बाद उसे देखने का अवसर न आया। बीमारी से छुटकारा पाते ही मन कुछ ऐसा उचाट हुआ कि मैं तीर्थ-यात्रा को निकल पड़ी। हरिद्वार में थी कि संतोष की बीमारी का खत मिला। उसके बाद तार मिला। बीमार होकर शायद वह भाई के पास आ गई थी। तार मिलते ही तीर्थयात्रा छोड़ कर भागी आई हूँ। राम जाने उसका क्या हाल है। खत में लिखा था कि बहुत कमजोर हो गई है। हड्डियों का पिंजर मात्र रह गई है। भाई ज़रा जल्दी करो न।"

तांगे वाले ने फटी आस्तीनों से आँखें पोंछीं और घोड़े की लगाम ढीली करता हुआ बोला, "चल बेटा।"

सूर्य पश्चिम की ओर ढल चुका था । आसमान पर बादल घिर आये थे । छावनी की सड़क पर फाटक की दाहिनी ओर एक मामूली सा, कच्ची ईंटों का मकान था और उसके आगे एक छोटा सा बरामदा, जिस पर एक छोटा सा फूस का छप्पर पड़ा था। मकान के एक ओर कुआं था जो शायद शेरशाह सूरी के समय में मुसाफिरों के आराम को बनवाया गया था। कुएं पर एक ग्यारह-बारह साल की लड़की पानी भर रही थी। सुनसान सी जगह और सांझ का उदास वातावरण—उस छोटे से मकान पर ऐसी मनहूसियत सी छा रही थी कि तांगे वाला एकाएक वहीं रुक गया। लड़की ने मुड़कर देखा और दौड़कर बुढ़िया से लिपट गई। "आ गईं बुआ!" और बुआ ने उसे अपनी गोद में ले लिया।

तांगेवाला सामान उठाकर बरामदे की ओर चल दिया।

"संतोष कहाँ है?" बुढ़िया ने पूछा।

"अन्दर।"

दोनों अन्दर गईं। बुढ़िया ने दौड़कर अपनी बीमार भतीजी का माथा चूम लिया। संतोष ने भीगी हुई करुणा-पूर्ण आँखों से अपनी बुआ की ओर देखा। और बुआ ने आंचल से अपनी आँखें ढक लीं।

पीलापन लिये हुए काला मुख, पिचके गाल, उभरी हुई जबड़ों की हड्डियाँ, रूखे बाल, और कंकाल सा शरीर। यक्ष्मा की ज्वाला से झुलसी संतोष बिस्तरे पर पड़ी थी। अतीत का सब कुछ उस ज्वाला में भस्म हो चुका था, बच रही थीं सिर्फ आँखें—बड़ी बड़ी गोल आँखें—जिनकी चमक फीकी पड़ चली थी। बुआ का जी बैठने सा लगा।

अपने पतले हाथों को उठाकर संतोष ने बुआ को नमस्कार करने की कोशिश की। लेकिन हाथों ने साथ न दिया, काँप उठे। बोलना चाहा लेकिन खांसी ने बेहाल कर दिया। तब दो बड़े बड़े आँसू उसके सूखे गालों पर ढुलक आये। बुढ़िया उसके सिरहाने बैठ गई। बहते हुए आँसुओं को पोंछा और सान्त्वनापूर्ण शब्दों में बोली, "जी क्यों छोटा करती

है। देख, मैं आगई हूँ, सब ठीक हो जायगा। कुछ ही दिनों में तू भली-चंगी हो जायगी। हेम कहाँ है? दवा लेने गया होगा।"

हेम के नाम पर संतोष के पीले चेहरे पर क्षण भर के लिए एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कान झलक उठी। फिर वह मुस्कान भी जैसे स्याह पड़ गई।

बुढ़िया ने लड़की से पूछा, "क्यों विमला हेम कहाँ है?"

विमला के नथुने फड़क उठे, "वही तो इस बीमारी का कारण है बुआ।"

"वह हेम?"

"हाँ वही।"

"क्या कहती हो......"

"ठीक कहती हूँ", विमला गुस्से में उबल सी पड़ी, जीजा जी ने बहन की कदर न की बुआ। वे थे फैशन के दीवाने—चाहते थे कि अपने अधिक शिक्षित मित्रों की तरह वे भी बहन का हाथ थामकर ठंडी सड़क पर घूमें, लारेन्स की सैर करें। स्वयं अमीर न होने पर भी उनकी नकल करना चाहते थे। और बहन को तो तुम जानती ही हो, कैसी शिक्षा मिली है। जीजा जी ने इन्हें न समझा। बुरे रास्ते जा लगे। किसी क्रपटी के पीछे लगे हुए थे। जब सब कुछ स्वाहा हो गया तो एक दिन बहन के गहने चुराकर भाग निकले। क्रपटी तो फिर लाहौर में दूसरों की जेबों पर डाका डालते देखी गई, पर जीजा जी का फिर पता नहीं चला।

सन्तोष ने तकलीफ़ से बेचैन होकर थूक निगला। इस बातचीत से उसकी आत्मा को बड़ा कष्ट हो रहा था।

प्यार से उसके सिर पर हाथ फेर कर बुआ ने पुकारा "सन्तोष" और ऐसी दृष्टि से उसे देखने लगी जैसे पूछ रही हो कि क्या यह सच है।

सन्तोष की आँखों से फिर आँसू बहने लगे।

—

"तुम अभी यहीं बैठे हो," बुढ़िया ने बाहर आकर तांगेवाले से कहा।

ताँगे वाला चुप रहा।

"क्या कहूँ भाई। लड़की की दशा देखकर कलेजा मुँह को आता है। मैं उसकी तकलीफ़ देखकर सब-कुछ भूल गई। दो साल पहले भली चंगी थी। लेकिन आज तो वह सिर्फ हड्डियों का ढाँचा भर है।

ताँगे वाले की आँखों में आंसू भर आये। उन्हें छिपाने के लिए उसने मुँह फेर लिया।

"तुम रोते हो भाई," बुआ ने भरे गले से कहा, "जो भी देखेगा, दुखी होगा।"

ताँगे वाला चुप रहा। सिर्फ उसने अपनी आँखें पोंछ डालीं।

"अच्छा भाई," पैसों के लिए जेब में हाथ डालते हुए बुढ़िया बोली, "तुम्हें देर हो रही होगी। अब तुम जाओ।"

पश्चिम की तरफ के बढ़ते अंधकार को देखकर ताँगे वाला बोला, "अब मैं कहाँ जाऊँगा माँ जी। यहीं न लेट रहूँ। शायद बाजार से कोई चीज़ ही लानी पड़े।"

कुछ सन्देह भरे स्वर में बुढ़िया बोली, "नहीं भाई अपने घर जाओ। यहाँ कहाँ रहोगे, कोई जगह भी तो हो।" यह कहते हुए उसने आठ आने पैसे उसके हाथ पर रख दिये।

ताँगे वाला उठा, "अच्छा माँ जी, तो मैं सुबह आ जाऊँगा। यह जगह शहर से बड़ी दूर है। और बीमार की हालत ठीक नहीं है। शायद किसी चीज़ की ज़रूरत ही पड़ जाय।......

अन्दर से खाँसने की आवाज़ आई और बुढ़िया अन्दर चली गई।

सन्ध्या का अँधेरा घना हो चुका था। दूर छावनी की ओर एक चिराग़ आशा-किरण की तरह टिमटिमा उठा। ताँगे वाला उठा। उसने ताँगे की बत्तियाँ जलाईं और फिर शहर की तरफ मुड़ चला।

अड्डे के पास उसकी छोटी सी कोठरी थी। आज रात भर वह सो नहीं सका। सन्तोष की दुखी, मुरझाई, करुण आँखें बार बार उसके सामने नाच जाती थीं।

दूसरे दिन संतोष की हालत और खराब हो गई। विमला दिन भर रोती रही। बुआ भी जी को समझाने के लिए उसकी तीमारदारी में लगी हुई थी। संतोष का भाई नरेन्द्र इतनी छुट्टियाँ ले चुका था कि अब और अधिक मिलनी मुश्किल थीं। दवाई इत्यादि का प्रबंध करके वह सुबह ही दफ्तर चला गया था। उसके जाते ही तांगे वाला वहाँ पहुँच गया। दिन भर उससे जितना हो सका उनकी सहायता की। दो बार तपती धूप में शहर दौड़ा गया। अपने प्यारे घोड़े को भी उसने जरूरत से ज्यादा तकलीफ़ दी। और उसे दाना तक देना भूल गया।

दोपहर को वह संतोष के लिए दवा तैयार कर रहा था। बुआ और विमला कुएँ पर पानी लाने गई थीं। उसी समय संतोष को जोरों की खांसी आई। वह हड़बड़ा कर अन्दर पहुँचा। संतोष ने खून की कै की थी। उसने पानी दिया। संतोष ने आंखें खोल दीं। देखा सामने तांगे वाला खड़ा है और उसकी आँखें भीगी हुई हैं। वह आंखें बन्द न कर सकी। टकटकी लगाकर तांगे वाले को देखती रह गई।

भर्राये गले से तांगेवाले ने पूछा, "अब कैसा जी है?"

संतोष ने कुछ उत्तर न दिया, सिर्फ एकटक उसकी ओर देखती रह गई।

तांगे वाला बोला, "तोषी, अपने अभागे पति को माफ कर दो! लाख पापी सही, फिर भी तुम्हारा है।"

संतोष की आँखें बन्द हो गईं। जैसे इस एक वाक्य से उसका सारा कष्ट, सारी बेचैनी दूर हो गई हो। उसने सिर हिलाया जैसे हृदय की ज्वाला को यों सहसा आकर शांत करने वाले की बात को वह खूब समझती हो। उसने एक लम्बी सांस ली, जैसे उसके दिल का सारा बोझ उतर गया हो और उसने अपने पति को क्षमा कर दिया हो।

तांगे वाला चुपचाप बरामदे में आ गया। उसने आँखों के आँसू पोंछे और फिर दवाई रगड़ने लगा। तभी विमला आ गई। पानी रखकर और हाथ पोंछकर उसने बहन के माथे पर हाथ रखा। बुख़ार का नाम

तक न था। संतोष के चेहरे पर एक दिव्य शान्ति सी छा रही थी। वह भागकर बाहर आई और बुआ को पुकारती हुई बोली, "बुआ बहन का बुख़ार उतर गया है।"

बुआ का मुंह लटक गया। तो बस अन्त समझो। मन मन के भारी पैरों को लेकर वह अन्दर आई। संतोष को आवाज़ दी, "बेटी!"

"हाँ बुआ!" बड़े क्षीण स्वर में संतोष ने उत्तर दिया। बोलने की शक्ति उसमें आ गई थी।

"कैसा जी है बेटी?"

"बस अन्त आ गया है बुआ।"

"छीः, ऐसी बातें करते हैं!" बुआ ने उसकी अपेक्षा अपने को बहलाने की चेष्टा की। और सहसा भयभीत होकर उन्होंने देखा कि संतोष की नाक कुछ मुड़ सी गई है।

विमला का हाथ संतोष ने अपने हाथ में ले लिया और उस पर अपना लकड़ी जैसा हाथ फेरने लगी। विमला के सारे शरीर में सनसनी सी दौड़ गई। उखड़ी-उखड़ी सांसों के बीच संतोष ने रुकते रुकते कहा, "तुम सुखी रहो बहन। तुम्हारी शादी अच्छी जगह हो, तुम्हें अच्छा वर मिले। यही मेरा आशीर्वाद है!"

फिर कुछ दम लेकर बोली, "मैं सुखी हूँ। मुझे कोई चिन्ता नहीं। मुझे अब आराम है और मैं शान्ति से मर रही हूँ।"

यह कहते कहते उसके हाथ भी मुड़ गये, सांस उखड़ गई। दोनों ने जल्दी-जल्दी उसे ज़मीन पर लिटा दिया।

बुआ ने कहा, "चलो भाई तुम भी चलो अब।"

तांगे वाले ने कोई उत्तर न दिया।

नरेन्द्र के दफ़्तर से लौटने पर संतोष की चिता जलाई गई। उसके बाद सब शहर जाने को तैयार हुए।

रो-रो कर विमला ने आँखें सुजा ली थीं। उसके चेहरे पर एक उन्माद सा बरस रहा था।

एक पेड़ की छाया में तांगे वाले का भूखा प्यासा घोड़ा खड़ा था। तीन दिनों से किसी ने उसकी सुध न ली थी। बीमार संतोष के लिए उसके मालिक ने उसे बीमार बना डाला था।

बुआ ने कहा, "अपने घर न चलोगे।"

तांगे वाला मौन रहा।

बुआ ने फिर पूछा, "अपने घर न चलोगे भाई ?

"नहीं जी !" इस बार उसने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"मैंने जीवन भर यहीं रहने का निश्चय कर लिया है।"

"पर क्यों ?"

"अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए।

"पाप ?"

" हाँ, जो मैंने संतोष को दुख पहुँचा कर किये हैं।

"संतोष को......तुम ने ?"

नरेन्द्र तांगे वाले के पास आ गया। उसे अच्छी तरह देखा और चौंक कर बोला, "कौन ? हेमराज !"

तांगे वाले ने सिर्फ आँखें उठाकर उसकी ओर देखा और फिर सिर झुका लिया।

नरेन्द्र ने घृणा से मुँह फेर लिया।

बुआ ने भौंहें तरेर लीं।

विमला ने एक बार तांगे वाले को ध्यान से देखा। पिछले कई वर्ष और फिर ये गत तीन दिन उसके सामने घूम गये और जैसे उसका क्रोध हवा हो गया। उसके मुँह से केवल इतना निकला "जीजा जी !" तभी नरेन्द्र ने विमला को आवाज़ दी।

हेम ने एक लम्बी साँस ली और अपने घोड़े के पास जाकर उसकी पीठ सहलाने